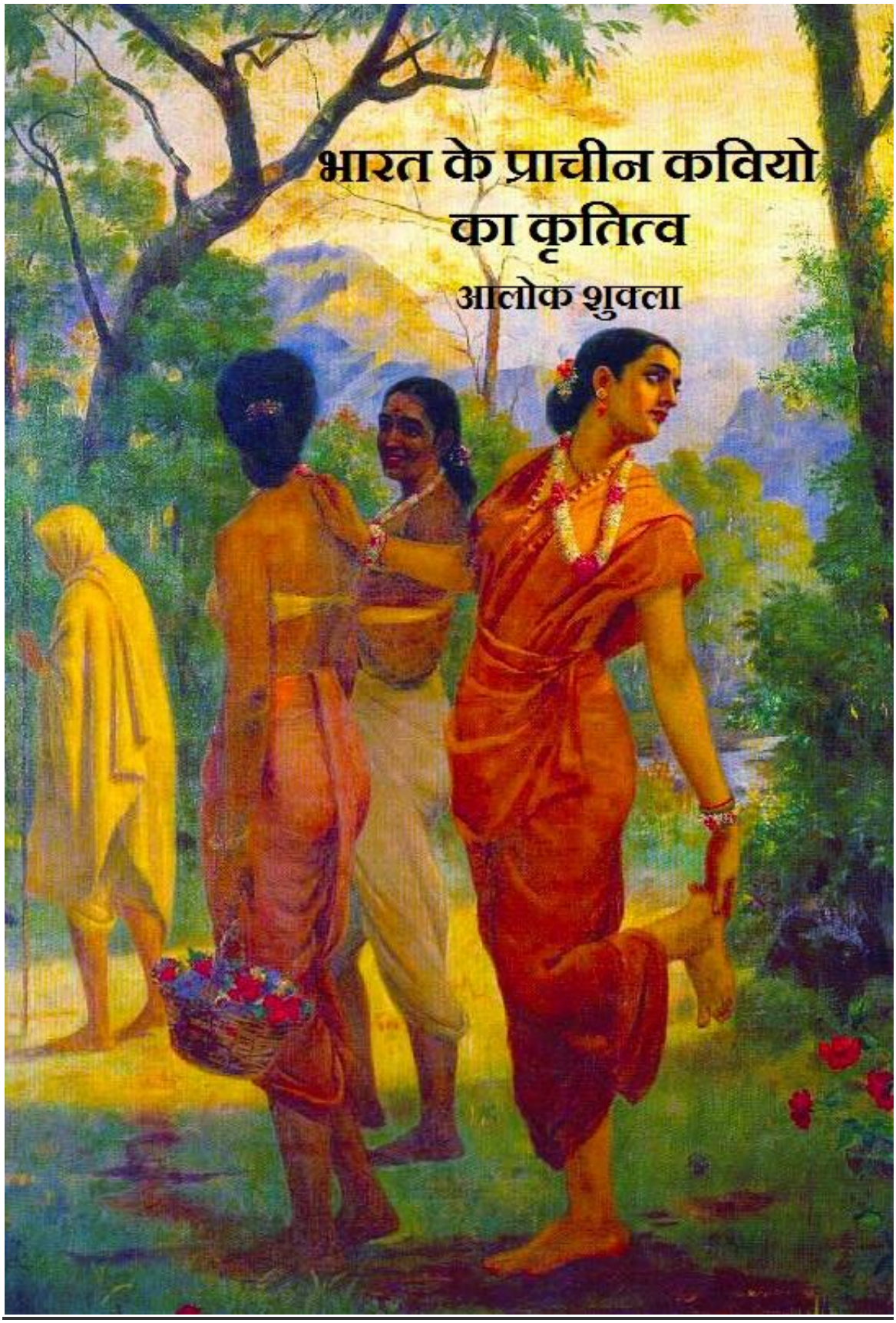
भारत के प्राचीन कवियो
का कृतित्व
आलोक शुक्ला

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ
1	प्रस्तावना	2
2	बिहारी और उनकी सतसई	4
3	रत्नाकर और उनका उध्दव शतक	9
4	रामचरित मानस में श्रंगार रस	17
5	महाकवि भूषण और उनकी वीररस की कविताएं	25
6	संत कबीर साहेब और गुरू की महत्ता पर उनके दोहे	31
7	संत कबीर की वाणी के कुछ और पहलू	38
8	रस की खान 'रसखान'	45
9	अब्दुर्रहीम खाने-खाना का बहुआयामी काव्य-	52
10	सूरदास	61
11	अमीर खुसरो	71
12	भक्त रैदास	83
13	मलिक मुहम्मद जायसी	87

प्रस्तावना

हिन्दी हमारी राजभाषा है और राष्ट्रभाषा भी है। हम सभी हिन्दी पर गर्व करते हैं। फिर भी सचाई यह है कि हिन्दी बोलने वाले भी हिन्दी साहित्य की संपन्नता, प्रचुरता और विवधिता से पूरी तरह परिचित नहीं हैं। हिन्दी के विकास और हिन्दी साहित्य के इतिहास पर बहुत से विव्दतापूर्ण ग्रंथ लिखे गये हैं। परन्तु ऐसी पुस्तकें आसानी से उपलब्ध नहीं हैं जिनके माध्यम से लोग आम बोलचाल की भाषा में हिन्दी साहित्य की महान रचनाओं से परिचित हो सकें। मैं तो विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूं और साहित्य के ज्ञान से पूरी तरह अछूता हूं, परंतु हिंदी साहित्य का प्रेम मुझे मेरी मां से विरासत में मिला है। बचपन में शाम के सयम घर के आंगन में खाना बनाते हुए मां अक्सर हिंदी साहित्य की सुंदर रचनाएं हम बच्चों को सुनाया करती थीं। इससे साहित्य के रसास्वादन की आदत हम सभी भाई-बहनों को पड़ गई। कुछ बड़ा होने पर मैने रायपुर के विवेकानंद आश्रम के पुस्तकालय से पुस्तकें लेकर पढ़ना प्रारंभ किया, और बहुत से साहित्यिक ग्रंथ पढ़ डाले। इन ग्रंथों को पढ़ने से एक बात मेरी अल्प बुध्दि में यह आई कि साहित्य की माला के मोतियों की एक प्रारंभिक झलक दिखाना साहित्य में रुचि विकसित करने के लिये आवश्यक है। यह पुस्तक न तो इन महान साहित्यिक कृतियों की समालोचना है और न ही इसमें उनके रस आंलकार भेद आदि का विस्त्रत अध्ययन है। इस पुस्तक का उद्देश्य केवल इतना ही है कि पाठक को हिन्दी के प्राचीन कवियों के महान कृतित्व की एक झलक मिल सके जिससे वे साहित्य के महासागर में गोता लगाने के लिये उतावले हो जायें।

हमारे देश में भाषा को अक्सर धर्म के साथ जोड़कर देखा गया है। इन महान कवियों की रचनाओं को पढ़कर यह भ्रांति पूरी तरह दूर हो जाती है कि हिन्दी किसी धर्म अथवा संप्रदाय की भाषा है। सचाई तो यह है कि हिन्दी के माध्यम से धर्मों और संप्रदायों में एकता और मित्रता का भाव उत्पन्न हुआ है। जहां रसखान कृष्ण भक्ति के गीत गाते हों, जायसी ने पद्मावत् लिखी हो और कबीर एक साथ हिन्दुओं तथा मुसलमानों के अंधविश्वासों पर प्रहार करते हों वहां हिन्दी को किसी धर्म या संप्रदाय की भाषा कैसे कहा जा सकता है। हिन्दी के महान कवियों की रचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी भारत की भाषा है, किसी धर्म की नहीं।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि अन्य भाषाओं का हिन्दी के विकास में बड़ा योगदान रहा है। हिन्दी के कवियों की भाषा में बृज भाषा और अवधी के साथ-साथ, फारसी, तुर्की आदि के शब्द

भी बड़ी सहजता से पिरोये गये हैं। रहीम की कुछ रचनाओं में तो छंदों को पहला भाग फारसी और दूसरा संस्कृत में है। अमीर खुसरो ने अपनी कुछ रचनाओं में एक वाक्य फारसी तथा दूसरा वाक्य हिन्दी में लिखा है। इससे हमें कम से कम इतनी सीख तो मिलती ही है कि हिन्दी का किसी भी भाषा से कोई झगड़ा नहीं है। हिन्दी सभी भाषाओं से अच्छी बाते ग्रहण करती रही है और यही इस महान भाषा की शक्ति है।

वर्तमान समय में बड़े अच्छे साहित्य का सृजन हो रहा है, परन्तु साधारण जन हिन्दी के प्रचीन साहित्य को भूलते जा रहे हैं। इसीलिये इस पुस्तक में मैने केवल प्राचीन कवियों एवं उनकी महान रचनाओं के संबंध में लिखा है। इसमें मूल रूप से आदिकाल और भक्तिकाल की रचनाओं का समावेश है। इन रचनाओं और कवियों के संबंध में जानकारी मैने अंतरजाल पर उपलब्ध बहुत से ब्लागों और वेबसाइटों से एकत्रित की है। विशेष रूप से हिन्दी विकीपीडिया, भारत ज्ञान कोष, रेख्ता, कविता कोष आदि का मैं बहुत आभारी हूं, क्योंकि इन वेबसाइटों से न केवल मुझे इन कवियों के संबंध में विस्त्रत जानकारी मिली और उनकी रचनाओं का मूल पाठ मिला, बल्कि बुहत सी कठिन रचानाओं के भावार्थ समझने में भी मदद मिली।

जिन प्राचीन कवियों की रचनाओं का समावेश इस पुस्तक में किया गया है, वे भारत की अंतरात्मा में रचे-बसे हैं। इनके लिखे भजन, दोहे, गीत, कव्वाली और गज़ल भारत के लोक संगीत की आत्मा हैं। इन्हें शास्त्रीय गायकों ने भी बहुत खूबसूरती से गाया और यह शास्त्रीय नृत्य और नाटक आदि के विषय भी रहे हैं। इनका पूरा रसास्वादन इन्हें पढ़ने मात्र से नहीं किया जा सकता। मैंने यू-ट्यूब पर उपलब्ध संसाधनों को इस पुस्तक में कवियों की रचनाओं के साथ लिंक कर दिया है, जिससे आप इन गीतों को सुनकर और नृत्य आदि को देखकर इनका पूरा आनंद प्राप्त कर सकें। पुस्कत के ई-प्रकाशन का इतना लाभ तो लिया ही जा सकता है। मैने प्रयास किया है कि अंतरजाल के इन संसाधनों से प्राप्त ज्ञान का वर्णन मैं अपने शब्दों में तथा अपनी समझ के अनुसार कर सकूं। यह पुस्तक यदि कुछ लोगों को भी इन महान कवियों की रचनाओं का अध्ययन करने के लिये और हिन्दी के प्राचीन साहित्य का रसास्वादन करने के लिये प्रेरित कर सकी तो मैं अपने आप को सफल मानूंगा।

आलोक शुक्ला

बिहारी और उनकी सतसई

बिहारी शाहजहाँ के समकालीन थे और जयपुर के राजा जयसिंह के राजकवि थे। महाकवि बिहारीलाल का जन्म जन्म 1603 के लगभग ग्वालियर में हुआ। वे जाति के माथुर चौबे थे। उनके पिता का नाम केशवराय था। महाकवि बिहारी की एक ही कृति प्रसिध्द है जिसे सतसई अथवा सप्तशती कहते हैं। इसमें 713 दोहे हैं। बिहारी की सतसई के विषय में कहा गया है -

सतसइया के दोहरा ज्यों नावक के तीर।

देखन में छोटे लगैं घाव करैं गम्भीर।।

(नावक = पुराने समय का एक तीर निर्माता जिसके तीर देखने में बहुत छोटे परन्तु बहुत तीखे होते थे, दोहरा = दोहा)

कहते हैं कि राजा जयसिंह विवाह के बाद अपनी नव-वधू के प्रेम में इतने डूब गये थे कि राज्य की तरफ बिलकुल ध्यान नहीं दे रहे थे। बिहारी ने उन्हें उन्हें अपना कर्तव्य याद दिलाने के लिये लिखा:

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल।

अली कली में ही बिन्ध्यो आगे कौन हवाल।।

यह दोहा श्लेष अलंकार का बहुत सुंदर उदाहरण है। इसका एक अर्थ है कि इस समय न तो बसंत ऋतु हैं, न फूल खिल रहे हैं फिर भी अभी से भौंरा कली में बंद हो गया है तो आगे क्या हाल होगा? परंतु अली का अर्थ राजा भी है और दोहे का यह अर्थ भी निकलता है कि अभी तो नव वधु बच्ची ही है, युवती भी नहीं हुई है और राजा अभी से विकास कार्यों को भूल कर नववधु में ही खो गया है तो आगे राज्य का क्या हाल होगा? कहते हैं कि इससे प्रभावित होकर राजा ने राज्य पर ध्यान देना शुरू कर दिया था।

यद्यपि सतसई की मूल भावना श्रंगार की है परंतु के प्रारंभ में भक्ति के दोहे भी हैं -

मोर मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।

यहि बानिक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल।।

(काछनी = धोती की काँछ, यहि बानिक = इसी तरह)

सतसई का प्रथम दोहा हैः

मेरी भववाधा हरौ, राधा नागरि सोय।

जा तन की झाँई परे स्याम हरित दुति होय।।

(झाँई = छाया, स्याम = श्याम, दुति = द्युति = प्रकाश)

यह दोहा भी श्लेष अलंकार का सुन्दर उदाहरण है। कृष्ण का रंग नीला था और राधा का सोने के समान पीला, तो राधा की पीले रंग की परछाई कृष्ण के नीले रंग पर पड़ने से वे हरे रंग के दिखाई देते हैं। दूसरा अर्थ यह भी है कि वे हरे अर्थात् प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं।

इसे राग बिलासखानी तोड़ी में मनुराज त्रिवेदी से यू-ट्यूब पर सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

इसी प्रकार का एक और बड़ा प्रसिध्द दोहा देखिये :

चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न स्नेह गम्भीर।

को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

अर्थात: यह जोड़ी चिरजीवी हो। इनमें क्यों न गहरा प्रेम हो, एक वृषभानु की पुत्री हैं, दूसरे बलराम के भाई हैं। दूसरा अर्थ है: एक वृषभ (बैल) की अनुजा (बहन) हैं और दूसरे हलधर (बैल) के भाई हैं। यहाँ भी श्लेष अलंकार है। राधा के भाई का नाम वृषभानु था और कृष्ण के भाई बलराम को हलधर भी कहते थे।

श्रंगार रस के वर्णन में अतिशयोक्ति अलंकार का सुदर प्रयोग देखिये -

काजर दै नहिं ऐ री सुहागिन, आँगुरि तो री कटैगी गँड़ासा

बिहारी ने नायिका की आंख की तुलना तेज़ धार गंडासे से की है और कह रहे हैं कि सुहागन काजल न लगा, कहीं तेरी उँगली तेरी गँड़ासे जैसी तेरी आँख की कोर से कट न जाये।

सुदर स्त्री की बिंदी की सुंदरता का ऐसा वर्णन कहां मिलेगा?

कहत सबै बेंदी दिये आंकु दसगुनौ होत।

तिय लिलार बेंदी दियैं, अगनितु बढ़तु उदोतु।।

अर्थात् कहते हें कि किसी अंक पर बिंदी लगा देने से वह दसगुना हा जाता है परंतु सुदर स्त्री की मस्तक पर बिंदी लगा देने से तो उसकी सुंदरता बेहद बढ़ जाती है।

कोई बच्ची जब युवावस्था मे कदम रख रही हो उस समय उस युवती के रूप का वर्णन देखिये -

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग।

दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता रंग।।

अभी बचपन गया नहीं है और जवानी भी बदन में झलकने लगी है, जिससे बचपन का भोलापन और और जवानी की सुदरता मिलकर उसे एक अलग ही दीप्ति दे रही हैं, जैसे धूप-छांव (टाफटा) के कपड़े में दो रंग एक साथ दिखाई देते हैं।

युवा होती हुई स्त्री की मन:स्थिति का वर्णन भी कितना सुंदर है -

भावकु उभरौहौं भयो, कछुक पर्यो भरुआइ।

सीपहरा के मिस हियौं, निस-दिन देखत जाय।।

उसकी छाती कुछ उभरी-उभरी हो गई है और उसे कुछ भार भी महसूस होने लगा है इसलिये (सीपहरा) सीप से निकले मोतियों की माला (जो वह पहने हुई है) देखने के बहाने (मिस) बार-बार जाकर (आइने में) देखती है।

आंखो ही आंखो में बात करने पर सुंदर दोहा दिखिये -

कहत, नटत, रीझत, खिजत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सब बात।।

लागों से भरे हुए भवन में वे बिनना किसी के जाने ही आंखों से सब बात कर लेते हैं। आंखें कहती हैं, नाचती हैं, रीझती हैं, गुस्सा करती हैं, मिल जाती हैं, खुश हो जाती हैं और लजा भी जाती है।

ऋतु वर्णन में प्रेम का सौदर्य देखिये -

तपन-तेज तापन-तपति, तूल-तुलाई माह।

सिसिर-सीतु क्यौहुं न कटे, बिनु लपटैं तिय नाह।।

सूर्य की किरणें (तपन-तेज), आग की गर्मी (तापन-तपति) और रज़ाई (तूल-तुलाई) से भी जाड़े की सर्दी तब तक नहीं मिटेगी जब तक वह अपने पति (नाह) से नहीं लिपटेगी।

अंत में रति अथवा समागम का यह रूप भी देखिये -

चमक तमक हांसी ससक, मसक झपट लपटानि।

ए जिहि रति सो रति मुकुति, और मुकुति अति हानि।।

चमकना तमकना, हंस पड़ना, सिसकना, मसकना, झपटना, लिपटना यह सब जिस समागम (रति) में हो वही मोक्ष (मोक्ष के समान आनंद देने वाला) है, अन्य प्रकार के मोक्ष में तो बहुत हानि है। यहां श्लेष अलंकार को विशेष रूप से देखिये प्रेमालाप के समागम में प्रेमी जो चेष्टाएं करते हैं वही ब्रम्हानंद में लीन योगी भी करते हुए दिखते हैं। तब प्रेम ही मोक्ष का साधन हुआ।

रत्नाकर और उनका उध्दव शतक

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म संवत 1923 बनारस के शिवाला घाट मोहल्ले में हुआ था। इनके पिता पुरुषोत्तम दास दिल्ली वाले अग्रवाल वैश्य थे और पूर्वज पानीपत के रहने वाले थे, जिनका मुग़ल दरबारों में बड़ा सम्मान था। रत्नाकर जी ने बाल्यावस्था में भारतेंदु हरिश्चंद्र का सत्संग भी किया था। भारतेंदु जी ने कहा भी था कि, "किसी दिन यह बालक हिन्दी की शोभा वृध्दि करेगा"। काशी के क्वींस कॉलेज से रत्नाकर जी ने बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की, जिसमें अंग्रेज़ी के साथ दूसरी भाषा फ़ारसी भी थी। जगन्नाथदास जी ने 'जकी' उपनाम से फ़ारसी में कविताएँ लिखना प्रारंभ किया। इस सम्बन्ध में इनके उस्ताद मुहम्मद हसन फायज थे। सन 1902 में वे अयोध्या नरेश के निजी सचिव नियुक्त हुए, किन्तु सन 1906 में महाराजा का स्वर्गवास हो गया। लेकिन इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर महारानी जगदंबा देवी ने इन्हें अपना निजी सेक्रेटरी नियुक्त किया तथा मृत्युपर्यंत रत्नाकर जी इस पद पर रहे। महारानी जगदंबा देवी की कृपा से उनकी काव्य कृति 'गंगावतरण' सामने आई। इन्होंने हिन्दी काव्य का अभ्यास प्रारंभ किया और ब्रजभाषा में काव्य रचना की। उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना उध्दव शतक है जिसमे उन्होने एक छोटी से घटना का वर्णन किया है। भगवान कृष्ण उध्दव को अपना संदेश लेकर गोकुल भेजते हैं। उध्दव वहां जाकर गोपियों को ज्ञान का पाठ पढ़ाते हैं परंतु गोपियों के कृष्ण प्रेम से प्रभावित होकर स्वयं भी ज्ञान मार्ग को छोड़कर कृष्ण भक्ति में लीन हो जाते हैं। उध्दव शतक के कुछ मार्मिक कवित्त नीचे दिये गये हैं।

उध्दव प्रारंभ में श्रीकृष्ण को भी बृहम और ज्ञान की ही शिक्षा दे रहे हैं। कवित्त क्रमांक 15 में देखिये -

पाँचौ तत्व माहिं एक तत्व ही की सत्ता सत्य,
याही तत्त्व-ज्ञान कौ महत्व सुति गायौ है ।
तुम तौ बिवेक रतनाकर कहौ क्यों पुनि,
भेद पंचभौतिक के रूप में रचायौ है ॥
गोपिनि मैं, आप मैं बियोग औ' संयोग हूँ मैं,
एकै भाव चाहिये सचोप ठहरायौ है ।
आपु ही सौं आपु कौ मिलाप औ' बिछोह कहा,
मोह यह मिथ्या सुख दुख सब ठायौ है ॥15॥

(पांचो तत्व एक बृहम की ही सत्ता है और यही वेदों में भी लिखा है। आप तो विवेक के भंडार हैं फिर यह संसार आपने पंचभौतिक रूप में क्यों बनाया है? जब सब ही एक है तो फिर स्वयं अपने से ही मिलन और विछोह का क्या तात्पर्य है? यह सुख-दुख सब मिथ्या है।)

कृष्ण इसके उत्तर में केवल इतना ही कहते हैं कि हे उध्दव एक बार गोकुल होकर आओ फिर यही ज्ञान सिखलाना तो हम तुम्हारी सारी बातें मान लेंगे -

प्रेम-नेम निफल निवारि उर-अंतर तैं,
ब्रहमज्ञान आनंद-निधान भरि लैहैं हम ।
कहै रतनाकर सुधाकर-मुखीन-ध्यान,
आँसुनि सौ धोइ जोति जोइ जरि लैहै हम ॥
आवो एक बार धारि गोकुल-गलि की धूरि,
तब इहिं नीति को प्रतीत धरि लैहैं हम ।
मन सौं, करेजै सौं, स्रवन-सिर आँखिनि सौं,
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लैं हवैं हम ॥18॥

इसके बाद कवि ने जो चमत्कार उत्पन्न किया है वह देखने लायक है। बृज भुमि पर पैर रखते ही उध्दव का ज्ञान जाने लगा और भक्ति भाव उत्पन्न हो गया -
हरैं-हरैं ज्ञान के गुमान घटि जानि लगे,
जोग के विधान ध्यान हूँ तैं टरिबै लगे ।
नैननि मैं नीर सकल शरीर छयौ,

प्रेम-अदभुत-सुख सूक्ति परिबै लगे ॥
गोकुल के गाँव की गली में पग पारत ही,
भूमि कैं प्रभाव भाव औरै भरिबै लगे ।
ज्ञान मारतंड के सुखाये मनु मानस कौं,
सरस सुहाये घनश्याम करिबै लगे ॥२३॥

गोपियों की दशा देखकर तो उध्दव अपना ज्ञान पूरी तरह से भूल जाते हैं -
दीन दशा देखि ब्रज-बालनि की उद्धव कौ,
गरिगौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से ।
कहै रतनाकर न आये मुख बैन नैन,
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से ॥
सूखे से स्रमे से सकबके से सके से थके,
भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने से,
हौले से हले से हूल-हूले से हिये मैं हाय,
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से ॥28॥

(गोपियों की दशा देखकर उध्दव का अपने ज्ञान का अभिमान समाप्त हो गया। उनके मुंह से शब्द नहीं निकले और आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। वे गोपियो की दशा देखकर हकबका गये और सब कुछ भूलकर उन्हें देखते ही रह गये। यहां पर अनुप्रास अलंकार का सुंदर प्रयोग भी देखिये)

उध्दव फिर भी गोपियों को ज्ञान देकर समझाने का प्रयास करते हैं कि सभी में उसी सर्वशक्तिमान परमात्मा की सत्ता हैं इसलिये किसी व्यक्ति के मिथ्याप्रेम में पागल होना उचित नहीं है। हमें संसार को बृहममय देखना चाहिये -
पंच तत्त्व मैं जो सच्चिदानन्द की सत्ता सो तौ,
हम तुम उनमैं समान ही समोई है ।
कहै रतनाकर विभूति पंच-भूत हूँ की,
एक ही सी सकल प्रभूतनि मैं पोई है ॥
माया के प्रंपच ही सौं भासत प्रभेद सबै,
काँच-फलकानि ज्यौं अनेक एक सोई है ।
देखौं भ्रम-पटल उघारि ज्ञान आँखिनि सौं,
कान्ह सब ही मैं कान्हा ही में सब कोई है ॥31॥

सोई कान्ह सोई तुम सोई सबही हैं लखौ,
घट-घट-अन्तर अनन्त स्यामघन कौं ।
कहै रतनाकर न भेद-भावना सौं भरौ,
बारिधि और बूँद के बिचारि बिछुरन कौं ॥
अबिचल चाहत मिलाप तौ बिलाप त्यागि,
जोग-जुगती करि जुगावौ ज्ञान-धन कौं ।
जीव आत्मा कौं परमात्मा मैं लीन करौ,
छीन करौं तन कौं न दीन करौ मन कौं ॥32॥

उध्दव का यह ज्ञान का संदेश धरा का धरा रह जाता है जब गोपियां उनसे पूछती हैं -
ऊधो कहौ सूधौ सौ सनेस पहिले तौ यह,
प्यारे परदेश तैं कबै धौ पग पारिहैं ।
कहै रतनाकर तिहारी परि बातनि मैं,
मीड़ि हम कबलौं करेजौ मन मारिहैं ॥
लाइ-लाइ पाती छाती कब लौं सिरेहैं हाय,
धरि-धरि ध्यान धीर कब लगि धारिहैं ।
बैननि उचारिहैं उराहनौं सबै धों कबै,
श्याम कौ सलौनो रूप नैननि निहारिहैं ॥35॥

षटरस-व्यंजन तौ रंजन सदा ही करें,
ऊधौ नवनीत हूँ सप्रीति कहूँ पावै हैं ।
कहै रतनाकर बिरद तौ बखानैं सब,
सांची कहौ केते कहि लालन लड़ावै हैं ॥
रतन सिंहासन बिराजि पाकसासन लौं,
जग चहुँ पासनि तो शासन चलावै हैं ।
जाइ जमुना तट पै कोऊ बट छाँह माहिं,
पांसुरी उमाहि कबौं बाँसुरी बजावै हैं ॥36॥

(गोपियां कहती है कि उध्दव यह ज्ञान की बातें तो छोड़ो और यह बताओ कि हमारे प्यारे परदेश से वापस कब आयेंगे। हम कब तक तुम्हारी इन बातों से अपना मन मारती रहेंगी? कब तक

हम इस पत्र को अपनी छाती से लगाकर धीरज रखेंगी? यह बताओ कि हमें उनसे बात करने और उनका सुंदर सलोना रूप देखने का मौका अब कब मिलेगा? गापियां आगे कहती हैं कि कृष्ण षडरस व्यंजन तो रोज़ ही खाते होंगे पर क्या उन्हें मक्खन भी खाने को मिलता है? उनकी प्रशंसा तो वहां सभी करते होंगे परन्तु उनसे प्रेम भरी बातें करके लाड़-प्यार भी कोई करता है? रत्नों से जड़े सिंहासन पर बैठकर वे शासन तो अवश्य ही चलाते होंगे परन्तु क्या कभी यमुना के तट पर वट वृक्ष की छांव में बांसुरी बजाने का सुख भी उन्हें मिलता है?)

इसके पश्चात् गोपियां उध्दव के बृहम ज्ञान का उपहास करती हैं और उन्हें विभिन्न प्रकार से बताती हैं कि बृहमज्ञान उनके लिये नहीं हैं। वे तो कृष्ण के प्रेम में ही रहना चाहती हैं। वे यह तक कहती हैं कि -

जोग को रमावै और समाधि को जगावै इहाँ
दुख-सुख साधनि सौं निपट निबेरी हैं ।
कहै रतनाकर न जानैं क्यों इतै धौं आइ
सांसनि की सासना की बासना बखेरी हैं ॥
हम जमराज की धरावतिं जमा न कछू
सुर-पति-संपति की चाहति न हेरी हैं ।
चेरी हैं न ऊधौ ! काहू ब्रहम के बबा की हम
सूधौ कहे देति एक कान्ह की कमेरी हैं ॥48॥

(यहां कोई जोग रमाने और समाधि लगाने वाला नहीं हैं। हमें तो समझ में नहीं आता कि यहां आकर तुम साधना करने की बातें क्यों कर रहे हो। हम न तो मृत्यु को जीतना चाहती हैं, न ही हमें देवताओं, पति और संतान की चाह है। गोपियां उपहास करके कहती हैं कि हम किसी बृहम के बाप की दासी नहीं हैं। हम सीधे कह देती हैं कि हम तो केवल कृष्ण की ही सेविका हैं।)

सरग न चाहैं अपबरग न चाहैं सुनो
भुक्ति-मुक्ति दोऊ सौं बिरक्ति उर आनैं हम ।
कहै रतनाकर तिहारे जोग-रोग माहि
तन मन सांसनि की सांसति प्रमानैं हम ॥
एक ब्रजचंद कृपा-मंद-मुसकानि ही मैं
लोक परलोक कौ अनंद जिय जानैं हम ।
जाके या बियोग-दुख हू में सुख ऐसो कछू
जाहि पाइ ब्रहम-सुख हू मैं दुःख मानैं हम ॥49॥

(हम न तो स्वर्ग चाहती हैं न ही मोक्ष चाहती हैं। हमें भोग और मुक्ति दोनो ही से विरक्ति है। हमें तो तुम्हारा यह योग किसी रोग की तरह लगता है। हम तो केवल कृष्ण की एक मुस्कान को ही लोक और परलोक दोनो का आनंद मानती हैं। उनके वियोग में भी कुछ ऐसा सुख है जिसके आगे बृहम सुख भी हमें दुख के समान लगता है।)

गोपियां उध्दव से कहती है कि तुम्हें यदि जग सपना दिखता है तो तुम हमे सोते हुए दिखते हो, और सपने में ही स्वयं अपने आप को ज्ञानी मानने लगे हो और इसीलिये सपने में बृहम-बृहम बकने लगे हो -

जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हैं
तातैं तुम ऊधौ हमैं सोवत लखात हौ ।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोवत की
जोई मुँह आवत सो बिबस बयात हौ ॥
सोवत मैं जागत लखत अपने कौ जिमि
त्यौं हीं तुम आपहीं सुज्ञानी समुझात हौ ।
जोग-जोग कबहूँ न जानै कहा जोहि जकौ
ब्रहम-ब्रहम कबहूँ बहकि बररात हौ ॥50॥

आगे गोपियां के प्रेम की पराकष्ठा देखिये। यहां पर कितनी दृढ़ता से गोपियां कह रही हैं कि कृष्ण तो हमारे ही हैं और हम उनकी ही हैं -

सुनीं गुनीं समझी तिहारी चतुराई जिती
कान्ह की पढ़ाई कविताई कुबरी की हैं ।
कहै रतनाकर त्रिकाल हूँ त्रिलोक हूँ मैं
आनैं हम नैकु ना त्रिवेद की कही की हैं ॥
कहहि प्रतीति प्रीति नीति हूँ त्रिबाचा बांधि
ऊधौ सांच मन की हिये की अरु जी की हैं ।
वे तो हैं हमारे ही हमारे ही हमारे ही औ
हम उनहीं की उनहीं की उनहीं की हैं ॥60॥

आगे गोपियां कहती हैं कि कुछ भी हो जाये कृष्ण के प्रति उनका प्रेम कम नहीं हो सकता। यह प्रेम ऐसा समुद्र नहीं है जिसे अगसत्य ऋषि ने सोख लिया था, यह तो गोपियों के प्रेम का प्रवाह है जो कभी कम नहीं हो सकता -

चाव सौं चले हौ जोग-चरचा चलाइबै कौं
चपल चितौनी तैं चुचात चित-चाह है ।
कहै रतनाकर पै पार न बसैहै कछु
हेरत हिरैहैं भरयौ जो उर उछाह है ॥
अंडे लौं टिटहरी के जहै जू बिबेक बहि
फेरि लहिबै की ताके तनक न राह है ।
यह वह सिंधु नाहिं सोखि जो अगस्त्य लियौ
ऊधौ यह गोपिन के प्रेम कौ प्रबाइ है ॥66॥

वे उध्दव से कहती हें कि कृष्ण के जाने के बाद से बृज में दीवाली जैसे त्योहार भी नहीं मनाए जाते -

आवति दीवारी बिलखाइ ब्रज-वारी कहैं
अबकै हमारै गाँव गोधन पुजैहै को ।
कहै रतनाकर विविध पकवान चाहि
चाह सौं सराहि चख चंचल चलैहै को ॥
निपट निहोरे जोरि हाथ निज साथ ऊधौ
दमकति दिव्य दीपमालिका दिखैहै को ।
कूबरी के कूबर तैं उबारि न पावैं कान्ह
इंद्र-कोप-लोपक गुबर्धन उठैहै को ॥86॥

अंत में गोपियां कृष्ण के लिये संदेश देती हैं -

ऊधौ यहै सूधौ सौ संदेश कहि दीजौ एक
जानति अनेक न विवेक ब्रज-बारी हैं ।
कहै रतनाकर असीम रावरी तौ क्षमा
क्षमता कहाँ लौं अपराध की हमारी हैं ॥
दीजै और ताडन सबै जो मन भावै पर
कीजै न दरस-रस बंचित बिचारी हैं ।
भली हैं बुरी हैं और सलज्ज निरलज्ज हू हैं
को कहै सौ हैं पै परिचारिका तिहारी हैं ॥96॥

(हे उध्दव कृष्ण से हमारा सह संदेश कह देना कि हम बृज की रहने वाली विवेक तो नहीं जानती। हमने तुम्हें प्रेम करने का जो अपराध किया है उसके लिये क्षमा करना, हमारी अपराध करने की बहुत अधिक क्षमता भी कहां है। जो तुम्हारे मन में आये वह सज़ा हमें देना पर अपने दर्शन से तो हमें वंचित मत करो। हम जैसी भी अच्छी-बुरी, सल्लज-निर्लज्ज हैं पर तुम्हारी सेविका ही हैं।)

इस प्रकार ज्ञान और भक्ति के तर्क-वितर्क में जीत भक्ति की ही होती है और उध्दव स्वंय भी भक्ति में लीन हो जाते हैं -

भाठी के वियोग जोग-जटिल-लुकाठी लाइ
लाग सौं सुहाग के अदाग पिघलाए हैं
कहै रत्नाकर सुवृत्त प्रेम सांचे मांहि
काँचे नेम संजम निवृति के ढराए हैं
अब परि बीच खीचि विरह-मरीचि-बिंब
देत लव लाग की गुविंद-उर लाए हैं
गोपी-ताप - तरून-तरनि-किरनावलि के
ऊधव नितांत कांत मनि बनि आए है

रत्नाकर जी के उध्दव शतक पर डा. कुमार विश्वास का यह प्रस्तुतीकरण यू-ट्यूब पर देखने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे के फोटो पर क्लिक करें -

रामचरित मानस में श्रंगार रस

गोस्वामी तुलसीदास जी रचित रामचरित मानस मूलत: भक्तिरस की रचना है, परंतु इसमें अनेक स्थानों पर श्रंगार रस का बड़ा ही मनोहर चित्रण हुआ है। राम और सीता के बीच पुनीत प्रेम का चित्रण तुलसीदास जी ने बहुत ही अच्छी तरह से किया है। कुछ प्रसंग नीचे दिये गये हैं -

सीमा स्वयंवर के पूर्व जब सीता गौरी पूजन के लिये जाती हैं और राम उसी वाटिका में फूल तोड़ने जाते हैं तो वहां पर अनायास ही दोनो एक दूसरे को देखते हैं और प्रथम दृष्टि में ही प्रेम का उदय होता है। सीता को देखने का राम पर क्या असर होता है पहले वह दखिये -

कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामुहृदयँ गुनि।।
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्ही।।
अस कहि फिर चितएते हिओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।।
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।।
देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा।।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रकट देखाई।।
सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई।।
सब उपमा कबि रहे जुठारी । केहि पटतरौं बिदेहकुमारी।।

इस चौपाई में 'क' वर्ण और 'न' वर्ण का अनुप्रास अलंकार के रूप में सुंदर प्रयोग है। राम लक्षमण से कह रहे हें कि कंगनों की मधुर ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कामदेव विश्व को जीतने का संकल्प करके डंका बजा रहे है। इतना कह कर राम ने सीता की ओर देखा तो चंद्रमा के समान सुंदर उनके मुख को निहारते रह गए। उनके नयन मानो चकोर बन गये हों। निमि जनक जी के पूवर्ज थे और उनका निवास पलकों में माना जाता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि पुत्री और दामाद के प्रेम को देखना उचित न समझ कर निमि पलकों को छोड़कर चले गये जिसके कारण पलकों ने झपकना बंद कर दिया और राम सीता को एकटक निहारते रहे। हृदय मे तो राम सीता की प्रशंसा करते हैं परंतु उनकी सुंदरता से प्रभावित राम के मुंह से बोल नहीं निकल पाते। सीता को बनाने में ब्रह्मा ने अपनी सारी निपुणता दिखा दी है। सीता को देख कर लगता है जैसे संदरता रूपी घर में दिये की लौ जल रही है। तुलसीदास जी कहते हैं कि सभी उपमाएं तो कवियों ने पहले से ही दे रखी हैं मैं कौन सी नई उपमा देकर सीता जी की सुंदरता का वर्णन करूं।

अब देखिये कि सीता ने राम को देखा तो उनके मन में किस प्रकार के भाव उत्पन्न हुए -

चितवति चकति चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृपकिसोर मनु चिंता।।
जहँ बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमलसित श्रेनी।।
लता ओट तब सखन्हि लखाए। स्यामाल गौर किसोर सुहाए।।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने।।
थके नयन रघुपति छवि देखे। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषे।।
अधिक सनेह देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।।
जब सिय सखन्हि प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी।।

सीता चकित सी चारों ओर देख रही है परंतु उन्हें दोनो राजकुमार कहीं दिखाई नहीं देते। वे जहां देखती हैं उन्हें कमल ही कमल दिखाई देते हैं। तब सखियों ने उन्हें एक लता की ओट में दिखाया। राम के रूप को देखकर सीता के नेत्र ललचाने नगे और उन्हें ऐसा लगा जैसे खजाना मिल गया हो। राम को देखकर सीता के नयन शिथिल हो गये। पलकों ने झपकाना बंद कर दिया। शरीर बेकाबू हो गया। ऐसा लगा जैसे शरद ऋतु में चकोरी बेसुध होकर चंद्रमा को देख रही हो। सीता ने राम को अपने हृदय में बसाकर अपने नयनों के किवाड़ बंद कर दिये। सखियों ने जब सीता को प्रेमबस जाना तो सकुचा गईं। इसे दूरदर्शन पर प्रसारित रामानंद सागर के रामयण सीरियल में बहुत सुदर ढ़ंग से दिखाया गया है। आप अपनी डिवाइस पर इंटरनेट चालू करके नीचे दी गई फोटो पर क्लिक करके यू-ट्यूब पर उपलब्ध इसका एक वीडियो देख सकते हैं -

राम के वन गमन के समय का एक प्रसंग है जिसमें सीमा के राम के प्रति प्रेम का बड़ा मार्मिक चित्रण गोस्वामी तुलसीदास जी ने किया है। राम सीता को सब प्रकार से समझाते हैं कि सीता को उनके साथ वन नहीं जाना चाहिये और संबंधियों के साथ सुखपूर्वक राजभवन में रहकर राम के वनवास के समय को व्यतीत करना चाहिये। सीता राम की अवज्ञा न करते हुए भी उन्हें बड़े मार्मिक ढंग से बताती हैं कि किस प्रकार बिना राम के सीता के लिये सारे सुख व्यर्थ हैं और राम के प्रेम के बिना वे जी भी नहीं सकती हैं -

सुनि मृदु वचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के।।
सीतल सिख दाहक भई कैसे। चकइहि सरद चंद निसि जैसे।।
उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही।।
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी।।
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देवि बड़ि अविनय मोरी।।
दीन्ह प्रानपति माहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परमहित होई।।
मैं पुनि समझ दीखि मन माही। पिय बियोग सम दुख जग नाही।।

अपने प्रियतम के मधुर वचन सुनकर सीता की आंखे भर आईं। उन्हें वे मधुर वचन भी उसी प्रकार लगे जैसे चकवी को शीतल चांदनी भी जलाने वाली लगती है। सीता ने सोचा कि मेरे पवित्र और प्रेमी स्वामी मुझे छोड़कर जाना चाहते हैं। अड़ी मुश्किल से अपने आंसुओं को रोककर सास के चरण छूकर वे बोलीं कि मेरी अविनय को क्षमा करें। मेरे प्राणपति ने मुझे वही सीख दी है जिसमें मेरा हित हो परंतु मैने अपने मन में देखकर समझ लिया है कि पति के वियोग से बढ़कर कोई दुख नहीं है।

प्राननाथ करुनायतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान।। 64

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृदय समुदाई।।
सासु ससुर गुरु सुजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई।।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहु ते ताते।।
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सब सोक समाजू।।
भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू।।
प्राननाथ तुम बिन जाग माही। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाही।।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदनु निहारे।।

सीता राम से कहती हैं कि हे मेरे अति सुंदर और प्रेम करने वाले और सुख देने वाले प्राणनाथ आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिये नरक के समान है। माता पिता आदि जितने भी स्नेह के नाते हैं, पति के बिना ये सभी स्त्री को सूर्य की तरह तपाने वाले हैं। शरीर, धन, पृथ्वी, नगर, राज्य आदि सभी शोक का समाज हैं। भोग, रोग के समान हैं और आभूषण भार रूप हैं। संसार यम की यातना जैसा है। आपके बिना मेरे लिये जगत में कोई सुख नहीं है। जैसे बिना जीव के देह और बिना पानी के नदी हैं वैसे ही बिना पुरुष के स्त्री है। आपके चंद्रमा के समान मुख को देखने से ही मुझे सारे सुख प्राप्त होंगे।

अयोध्याकांड में जब गांव की स्त्रियां सीता से पूछती हैं कि यह दोनो सुंदर पुरुष तुम्हारे कौन हैं तो जिस प्रकार सीता लजाकर, शर्माकर उन्हें उत्तर देती हैं वह श्रंगार रस की पराकष्ठा है -

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहो को आहिं तुम्हारे।।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसकानी।।
तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहूँ सकोच सकुचति बर बरनी।।
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी।।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे।।
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढ़ांकी। पिय तन चितई भौंह कर बांकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निजपति कहेउ तिन्हहिं सियँ सयननि।।
भई मुदित सब ग्राम बधूटी। रंकन्ह राय रासि जनु लूटी।।

गांव की स्त्रियां सीता से पूछती हैं कि यह करोड़ों कामदेव को लजाने वाले तुम्हारे कौन हैं। यह सुनकर सीता शर्मा गईं, और मन ही मन मुस्कुराईं। बड़ा संकोचकर मृग के नयनों वाली सुंदर सीता कोयल जैसी प्रिय वाणी में बोलीं - जो सहज स्वभाव के सुंदर और गोरे हैं वे मेरे छोटे देवर लक्षमण हैं। फिर संकोच के कारण बड़े जतन से अपने मुंह को आंचल से छुपाकर आने पति की ओर भंवे तिरछी करके इशारा करते हुए खंजन पक्षी की आंखें जैसे सुंदर नेत्रों को तिरछा करके कहा - ''और यह मेरे पति हैं''

अरण्यकांड में सीता हरण के पश्चात् राम जब आश्रम लौटकर आते हैं और सीता को वहां नहीं पाते हैं तो सीता के विरह में पागल के समान पेड़-पौधों तक से सीता का पता पूछने लगते हैं। विरह वेदना का इससे अच्छा चित्रण कहां मिलेगा?

आश्रम देख जानकी हीना। भए बिमल जस प्राकृत दीना।।
हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता।।
लछिमन समुझाए बहु भांती। पूछत चले लता तरु पाँती।।
हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी। तुम्ह देखी सीता मृनयनी।।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।।
कुद कली दाणिम दामिनी। कमल सद ससि अहिभामिनी।।
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाई जनु राजू।।
किमि सहिजात अनख तोहि पाही। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाही।।
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी।।

जब आश्रम में जानकी नहीं मिलीं तो रामचंद्र जी अत्यत व्याकुल हो गये और पेढ़ पौधों तक से पूछने लगे कि उन्होने सीता को देखा तो नहीं है। वे कहते हैं कि खंजन पक्षी, शुक कपोत, कमल, आदि सभी सीता के चले जाने से बड़े प्रसन्न हैं क्योंकि सीता उनसे भी अधिक सुंदर हैं और सीता के सामने उनकी सुंदरता तुच्छ थी। राम कहते हैं कि सीता तुमसे यह प्रतिस्पर्धा कैसे सही जाती है और तुम प्रकट क्यों नहीं हो जाती हो। यह प्रसंग भी दूरदर्शन पर प्रसारित रामानंद सागर के रामायण सीरियल में बड़े मार्मिक ढ़ंग से दिखाया गया है। अपनी डिवाइस पर इंटरनेट चालू करके और नीचे दी गई फोटो पर क्लिक करके आप इसका यू-ट्यूब पर उपलब्ध वीडियो देख सकते हैं -

सीता के विरह का वर्णन सुदर कांड में देखिये। रावण जब सीता को डरा-धमका कर चला गया तो सीता रात के विरह में अपने प्राण देना चाहती हैं। वे कहती हैं कि विधि भी उनके प्रतिकूल हो गई है। स्वयं को जलाने के लिये उन्हें आग मिलती नहीं और इसलिये उनका कष्ट समाप्त नहीं होता। आकाश के तारे भी अंगारे के समान होते हैं, परन्तु आज आकाश में कोई तारा भी नहीं है, और आग से भरा हुआ चंद्रमा भी मुझे हतभागी मान कर आग नहीं देता। हे अशोक के वृक्ष तेरे लाल रंग के नये पत्ते भी आग की ही तरह हैं, तू ही मुझे आग देकर मेरा शोक समाप्त कर और अपना नाम सत्य कर ले।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला।
मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा।
अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी।
मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका।
सत्य नाम करु हरु मम सोका॥
नूतन किसलय अनल समाना।
देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता।
सो छन कपिहि कलप सम बीता॥

इस प्रसंग को अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके डा. मधुकर आनंद के सुदर कथक नृत्य के यू-ट्यूब वीडियो के रूप में देखने के लिये नीचे की फोटो को क्लिक करें -

सुदरकांड में जब हनुमान जी सीता को राम का संदेश सुना रहे हैं, उसमें राम का विरह निवेदन और सीता के प्रति प्रेम का प्रदर्शन देखने योग्य है -

कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता।।
नवतरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू।।
कुबलय बिपिन कुन्त बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा।।
जे हित रहे करत तेई पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।।
कहेहुँ ते कछु दुख घटि होही। काहि कहों यह जान न कोई।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मन मोरा।।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानू प्रीति रसु एतनेहि माहीं।।
प्रभु संदेस सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।।

राम कहते हैं कि - हे सीता तेरे वियोग में मरे लिये सभी कुछ विपरीत हो गया है। फूल मुरझा गये हैं। रात कालरात्रि के समान है और शीतल चंद्रमा तपते हुए सूर्य के समान है। कमल, भालों के समान हो गये हैं। बारिश का पानी खौलते हुए तेल के समय लगता है। जो कुछ पहले अच्छा लगता था वही अब तकलीफ देता है। ठंडी हवा सांपों की फुफकार जैसी लगती है। तेरे और मेरे प्रेम को तो केवल मेरा मन ही जान सकता है और मेरा मन तो सदा तेरे ही पास है। इतने में ही मेरे प्रेम का सार समझ ले।

इसी प्रकार लंका से वापस आकर हनुमान जी सीता का संदेश राम को देते हैं। इसमें भी सीता की तड़प और विरह का भाव छलकता हुआ दिखता है। विरह के वर्णन का यह अनुपम उदाहरण है -

नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी।।
अनुज समेत गहेउ प्रभु चरना। दीनबंधु प्ररनतारित हरना।।
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी।।
अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन पयाना।।
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा।।
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरहि छन माहिं सरीरा।।
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जलैं न पाव देह बिरहागी।।

सीता ने आंखों में आंसू भरकर कहा कि मैं तो मन क्रम वचन से आप ही को प्रेम करती हूं फिर किसा अपराध के कारण आपने मुझे त्याग दिया है। हां, मै अपना एक अवगुण मानती हूं कि आपसे बिछड़ते ही प्राण क्यों नहीं निकल गये। परंतु यह तो नयनों का अपराध है। आपकी विरह में गर्म श्वास से एक ही छण में शरीर जल जाता, परंतु स्वयं को बचाने के लिये नयन लगातार पानी बहाते रहते हैं जिससे देह जल नहीं पाती।

महाकवि भूषण और उनकी वीररस की कविताएं

भूषण का जन्म कानपुर में 'तिकवांपुर' में 1613-1715 ई. के आस पास हुआ था। 'शिवराज भूषण', 'शिवाबावनी', और 'छत्रसाल दशक' नामक तीन ग्रंथ ही इनके लिखे छः ग्रथों में से उपलब्ध हैं। ये 'रत्नाकर त्रिपाठी' के पुत्र थे। चित्रकूट के राजा हृदयराम के पुत्र रुद्र सुलंकी ने इन्हें 'भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था। इनका असली नाम क्या था, इसका पता नहीं। ये कई राजाओं के यहाँ रहे। पन्ना के महाराज छत्रसाल के यहाँ इनका बड़ा मान हुआ। कहते हैं कि महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी में अपना कंधा लगाया था जिस पर इन्होंने कहा था - **सिवा को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को**। इन्होने प्रमुख रूप से शिवाजी और छत्रसाल की प्रशंसा में ही लिखा है। यद्यपि भूषण रीतिकाल के कवि हैं परंतु उन्होने वीररस में ही रचनाएं की हैं। भूषण की कविताओं की भाषा बृज भाषा है परंतु उन्होने अपनी रचनाओं में उर्दू, फारसी आदि के शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया है। भूषण के 6 ग्रंथ माने जाते हैं परंतु उनमें से केवल 3 ही ग्रंथ, शिवराज भूषण, छत्रसाल दशक व शिवा बावनी ही उपलब्ध हैं।

भूषण के नायक शिवाजी थे। शिवाजी का महिमा मंडन भूषण के काव्य में सर्वत्र दिखता है। शिवाजी का वर्णन करते हुए वे कहते हैं -

इन्द्र जिमि जंभ पर , वाडव सुअंभ पर ।
रावन सदंभ पर , रघुकुल राज है ॥१॥
पौन बरिबाह पर , संभु रतिनाह पर ।
ज्यों सहसबाह पर , राम व्दिजराज है ॥२॥
दावा द्रुमदंड पर , चीता मृगझुंड पर ।
भूषण वितुण्ड पर , जैसे मृगराज है ॥३॥
तेजतम अंस पर , कान्ह जिमि कंस पर ।
त्यों म्लेच्छ बंस पर , शेर सिवराज है ॥४॥

भावार्थ - जिस प्रकार जंभासुर पर इंद्र, समुद्र पर बड़वानल, रावण के दंभ पर रघुकुल राज, बादलों पर पवन, रति के पति अर्थात कामदेव पर शंभु, सहस्त्रबाहु पर ब्राह्मण राम अर्थात परशुराम, पेड़ो के तनों पर दावानल, हिरणों के झुंड पर चीता, हाथी पर शेर, अंधेरे पर प्रकाश की एक किरण, कंस पर कृष्ण भारी हैं उसी प्रकार म्लेच्छ वंश पर शिवाजी शेर के समान हैं।

भुषण के इस छंद को महाराष्ट्र में ठोल ताशे बजाकर बड़ी मस्ती में और बहुत ऊर्जा के साथ गाया जाता है। अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके इसका एक यू-ट्यूब वीडियो नीचे की फोटो पर क्लिक करके देखें -

इसी सुंदर छंद पर गीतांजली रावल जोशी का कथक नृत्य यू-ट्यूब पर देखने के लिये नीचे की अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके फोटो क्लिक करें -

शिवाजी की सेना को देखकर शत्रु का क्या हाल होता है इसका वर्णन देखें -

बाने फहराने घहराने घण्टा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देस देस के ।
नग भहराने ग्रामनगर पराने सुनि,
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के ॥
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के ।
दल के दरारे हुते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिगराने फन सेस के ॥

भावार्थ - शिवाजी की सेना के झंडों के फहराने से और हाथियों के गले में बंधे हुए घण्टों की आवाजों से देशृ-देश राजा-महाराज पल भर भी न ठहर सके। शिवाजी की सेना के नगाणों की आवाज़ से पहाड तक हिल गऐ और गांवों और नगरों के लोग इधर-उधर भागने लगे। शत्रु-सेना के हाथियों पर बंधे हुए हौदे घड़ों की तरह टूट गये। शत्रु-देशों की स्त्रियां, जब अपने-अपने घरों की ओर भागीं तो उनके केश हवा में इस तरह उड़ रहे थे, जैसे कि काले रंग के भौंरों के झुंड के झुंड उड़ रहे हों। शिवाजी की सेना के चलने की धमक से कारण कछुए की मजबूत पींठ टूटने लगी है और शेषनाग के फन केले के पत्तों की तरह फट गए।

शिवाजी की सेना की नरसंहारक क्षमता का एक और काव्यमय वर्णन देखें -

प्रेतिनी पिसाच अरु निसाचर निशाचरहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई हैं ।
भैरो भूत-प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई हैं ॥
किलकि किलकि के कुतूहल करति कलि,
डिम-डिम डमरू दिगम्बर बजाई हैं ।
सिवा पूछें सिव सों समाज आजु कहाँ चली,
काहु पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई हैं ॥

भावार्थ - प्रेतनी, पिशाच, निशाचर मिलजुल कर बधाई गा रहे हैं। अत्यंत भयंकर भूत-प्रेत, भैरव और जोथिनियों की जमातें एकत्रित हो गई हैं। काली और दिगंबर ढमरू बजाकर हंस रहे हैं। यह देखकर पार्वती जी ने शिव जी से पूछा कि यह सब आपका समाज आज कहां जा रहा है, तो शिवजी ने कहा कि ऐसा लगता है कि राजा शिवाजी किसी पर नाराज़ हो गये हैं और इस कारण युध्द और नरसंहार की आशा में यह सभी उसी ओर जा रहे हैं।

अब ज़रा भूषण के युध्द वर्णन में छंद का ध्वन्यात्मक सौंदर्य और उपमा अलंकार का सजीव चित्रण देखिये -

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है ।
'भूषण' भनत नाद विहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत है ।।
ऐल फैल खैल-भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठेल पेल सैल उसलत है ।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ।।

भावार्थ - अपनी चतुरंगिनी सेना को वीरता से परिपूर्ण कर घोड़े पर चढ़कर शिवाजी युध्द जीतने निकाल पड़े हैं। नगाड़े बज रहे हैं और मतवाले हाथियों के मद से सभी नदी-नाले भर गये हैं। (ऐल) भीड़, कोलाहल, चीख-पुकार, (फैल) फैलने से (गैल) रास्तो पर (खैल-भैल) खलबली मच रही है । हाथियों चलने के कारण धक्का लगने से रास्ते के पहाड़ उखड कर गिर रहे हैं। विशाल सेना के चलने से उड़ने वाली धूल के कारण सूरज भी एक टिमटिमाते हुए तारे सा दिखने लगा है। सेना के चलने से संसार ऐसे डोल रहा है जैसे थाली में रखा हुआ पारा हिलता है।

यह कुछ-कुछ आजकर के रैप सांग की तरह है। इसे समझने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करके एक यू- ट्यूब वीडियो देखिये -

यहां पर मनहरण छंद का प्रयोग एवं शब्दों का चयन वीरता की ध्वनि उत्पन्न करने के लिये किया गया है। अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग भी देखिये। कहा जाता है कि हाथी जब युवावस्था में पहुंचता है तो उसके कानो से मद नामक एक नशीला पदार्थ निकलता है। शिवाजी की सेना में इतने हाथी कि उनसे निकलने वाले मद से नदी नाले तक भर गए। उपमा अलंकार का सुंदर उदाहरण सेवा के वलने से उड़ने वाली धूल के आसमान पर छा जाने से सूर्य का तारे के समान टिमटिमाने के वर्णन में देखा जा सकता है।

इस छंद का महाराष्ट्र के एक नाटक में मंचन यू-ट्यूब पर देखने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

भूषण के छंदों में अलंकारों का बहुत सुंदर प्रयोग हुआ है। इस छंद में यमक अलंकार का प्रयोग देखिये -

ऊंचे घोर मंदर के अंदर रहन वारी,
ऊंचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करें कंद मूल भोग करें
तीन बेर खातीं, ते वे तीन बेर खाती हैं।
भूषन शिथिल अंग भूषन शिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वे बिजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वे नगन जड़ाती हैं॥

भावार्थ - ऊंचे घोर मंदर (महल) में रहने वाली स्त्रियां, ऊंचे घोर मंदर (गुफा) में रहने को विवश हैं। कंद मूल (राजघराने में खाने के प्रयोग में लाये जाने वाले जायकेदार कंद-मूल वगैरह) का भोग करने वाली कंद मूल (जंगल मे मिलने वाली जड़ इत्यादि) खाने को विवश हैं और जो तीन बेर खातीं (दनि में तीन बार) खाना खातीं थी वे तीन बेर (केवल तीन बेर) खाकर रह जाती हैं। जिनके भूषन शिथिल अंग (आभूषणों से शिथिल अंग) थे उनके अब भूषन शिथिल अंग (भूख से शिथिल अंग) हैं। यहां पर 'ख' वर्ण के स्थान पर 'ष' वर्ण का प्रयोग बड़े सुंदर ढंग से हुआ है। जिनपर विजन (पंखा) डुलाया जाता था वे आज विजन (निर्जन स्थान) पर डोलने को विवश हैं। भूषण कहते हैं कि वीर शिवाजी के डर से जो नगन जड़ाती थीं (नगों से जड़े हुए गहने पहने रहती थीं) वे नगन जड़ाती हैं (सर्दी के मौसम में भी नग्न हैं)।

रीतिकाल में भी वीर रस का सुंदर काव्य लिखने के कारण हिंदी साहित्य में कविवर भूषण का विशिष्ट स्थान है।

संत कबीर साहेब और गुरू की महत्ता पर उनके दोहे

कबीर का जन्म- सन् 1398 में काशी और मृत्यु सन् 1518 में मगहर में मानी जाती है। कबीर मध्यकालीन भारत भक्त कवि, और समाज सुधारक थे। इनके नाम पर कबीरपंथ नामक संप्रदाय भी प्रचलित है। कबीरपंथी इन्हें एक अलौकिक अवतारी पुरुष मानते हैं। संत कबीर दास हिंदी साहित्य के भक्ति काल के इकलौते ऐसे कवि हैं, जो आजीवन समाज और लोगों के बीच व्याप्त आडंबरों पर कुठाराघात करते रहे। डॉ. हज़ारी प्रसाद व्दिवेदी ने लिखा है कि साधना के क्षेत्र में वे युग - युग के गुरु थे, उन्होंने संत काव्य का पथ प्रदर्शन कर साहित्यक्षेत्र में नव निर्माण किया था। कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था में स्वामी रामानंद के प्रभाव से उन्हें हिन्दू धर्म की बातें मालूम हुईं। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगा स्नान करने के लिये सीढ़ियाँ उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल `राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में- **हम कासी में प्रकट भये हैं, रामानन्द चेताये।**

कबीरपंथियों में इनके जन्म के विषय में यह पद्य प्रसिद्ध है-

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए॥
घन गरजें दामिनि दमके बूँदे बरषें झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए॥

कबीर की रचनाओं में अनेक भाषाओं के शब्द मिलते हैं यथा - अरबी, फ़ारसी,पंजाबी, बुन्देलखंडी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि के शब्द मिलते हैं इसलिए इनकी भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' या 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा जाता है।

ऐसी मान्यता है कि मृत्यु के बाद कबीर के शव को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था। हिन्दू कहते थे कि उनका अंतिम संस्कार हिन्दू रीति से होना चाहिए और मुस्लिम कहते थे कि मुस्लिम रीति से। इसी विवाद के चलते जब उनके शव पर से चादर हट गई, तब लोगों ने वहाँ फूलों का ढेर पड़ा देखा। मगहर में कबीर की समाधि है।

संत कबीर साहेब ने ढ़ोंग और आडंबर के विरुध्द बहुत से दोहे लिखे हैं, परन्तु उनके विषय में फिर कभी चर्चा करेंगे। इस अध्याय में कबीर साहेब व्दारा गुरू की महिमा पर लिखे गये दोहों का रसास्वादन करते हैं -

गुरु गोविंद दोऊँ खड़े, काके लागूं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने,गोविंद दियो बताय॥

भगवान और गुरू दोनो सामने खड़े हो तो किसके पैर पहले पड़ना चाहिये - कबीर साहेब कहते हैं कि पहले गुरू के पैर पड़ो जिन्होने भगवाल के बारे में बताया, अर्थात बिना गुरू के भगवान भी नहीं मिलते।

गुरु सो ज्ञान जु लीजिये, सीस दीजये दान।
बहुतक भोंदू बहि गये, सखि जीव अभिमान॥

ज्ञान प्राप्त करने के लिये गुरू को अपना सिर तक दान में दे देना चाहिये अर्थात जान तक दे देनी चाहिये - यह सीख न मानकर कितने ही अभिमानी मूर्ख संसार से बह गये, अर्थात तर नहीं पाये।

गुरु पारस को अन्तरो, जानत हैं सब सन्त।
वह लोहा कंचन करे, ये करि लये महन्त॥

गुरु में और पारस - पत्थर के अन्तर को सभी जानते हैं। पारस तो लोहे को सोना ही बनाता है, परन्तु गुरु शिष्य को अपने समान महान बना लेता है।

कुमति कीच चेला भरा, गुरु ज्ञान जल होय।
जनम - जनम का मोरचा, पल में डारे धोय॥

चेला तो कुबुध्दि की कीचड़ से भरा है, जिसके जन्म-जन्मांतर की बुराई को गुरु ज्ञान के जल से पल भर में ही धो देते हैं।

गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, गढ़ि - गढ़ि काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट॥

गुरु कुम्हार के समान है और शिष्य घड़े के समान है। कुम्हार जिस प्रकार घड़े को गढ़ने के लिये अंदर हाथ का सहारा देता है और बाहर से चोट करता है, वैसे ही गुरू भी शिष्य की अंतर आत्मा को सहारा देते हैं जबकि बाहर से डांट-डपट कर शिष्य को अच्छा बनाते हैं।

गुरु समान दाता नहीं, याचक शीष समान।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्ही दान॥

गुरु के समान कोई दानी और शिष्य के समान मांगने वाला नहीं है। तीनो लोकों की सम्पत्ति से भी बढ़कर ज्ञान का दान गुरु ने शिष्य को दिया है।

जो गुरु बसै बनारसी, शीष समुन्दर तीर।
एक पलक बिखरे नहीं, जो गुण होय शारीर॥

गुरु वाराणसी में रहते हों और शिष्य समुद्र के किनारे रहता हो अर्थात गुरू और शिष्य एक दूसरे से दूर भी हों तो भी शिष्य में गुरु का दिया गुण होगा, जो वह गुरु को एक पल के लिये भी नहीं भूलेगा।

गुरु को सिर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।
कहैं कबीर ता दास को, तीन लोकों भय नाहिं॥

गुरु का आदर करके और उनकी आज्ञा मानकार चलने वाले शिष्य को तीनों लोकों मे किसी से भी भय नहीं है।

गुरु मूरति गति चन्द्रमा, सेवक नैन चकोर।
आठ पहर निरखत रहे, गुरु मूरति की ओर॥

गुरु का रूप चन्द्रमा के समान है और शिष्य के नेत्र चकोर जैसे हैं जो आठो पहर गुरु - मूर्ति को ही देखते रहते हैं।

गुरु मूरति आगे खड़ी, दुतिया भेद कुछ नाहिं।
उन्हीं कूं परनाम करि, सकल तिमिर मिटि जाहिं॥

गुरु तुम्हारे पास हैं इसलिये और कोई भेद न मानकार उन्हीं को प्रणाम करो तो मन का सारा अंधकार मिट जायेगा।

ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास।
गुरु सेवा ते पाइए, सद् गुरु चरण निवास॥

ज्ञान, सन्त - समागम, प्रेम, सुख, दया, भक्ति और विश्वास यह सभी गुरु के चरणों में ही हैं और गुरु की सेवा से ही मिलते हैं।

सब धरती कागज करूँ, लिखनी सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुण लिखा न जाय॥

सारी पृथ्वी को कागज, सारे जंगल को कलम और सातों समुद्रों के जल को को स्याही बनाकर लिखने पर भी गुरु के गुण पूर्ण रूप से नहीं लिखे जा सकते।

पंडित यदि पढि गुनि मुये, गुरु बिना मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्त शब्द परमान॥

बड़े - बड़े शास्त्रों को पढकर जो अपने को विव्दान कहते हैं उन्हें भी बिना गुरू के ज्ञान नही मिलता है और ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती, ऐसा शास्त्रो का प्रमाण है।

कहै कबीर तजि भरत को, नन्हा है कर पीव।
तजि अहं गुरु चरण गहु, जमसों बाचै जीव॥

कबीर साहेब कहते हैं कि भ्रम को छोड़कर, छोटे बच्चे के समान गुरु के वचनो को दूध के समान पियो। इस प्रकार अहंकार को त्याग कर गुरु के चरणों की शरण ग्रहण करने पर ही जीव यम से बचेगा।

सोई सोई नाच नचाइये, जेहि निबहे गुरु प्रेम।
कहै कबीर गुरु प्रेम बिन, कितहुं कुशल नहिं क्षेम॥

अपने मन और शरीर से वही सब करो, जिससे गुरु के प्रति प्रेम बढ़े। कबीर साहेब कहते हैं कि गुरु के प्रेम बिन, कहीं कुशलक्षेम नहीं है।

करै दूरी अज्ञानता, अंजन ज्ञान सुदये।
बलिहारी वे गुरु की हँस उबारि जु लेय॥

ज्ञान का अंजन लगाकर गुरू शिष्य का अज्ञान दूर कर देते हैं। गुरुजनों की प्रशंसा है, जो हंसते हुए जीवो को भव से बचा लेते हैं।

सतगुरु सम कोई नहीं, सात दीप नौ खण्ड।
तीन लोक न पाइये, अरु इकइस ब्रह्मणड॥

सातों व्दीपों, नौ खण्डों, तीन लोकों और इक्कीस ब्रह्माण्डों में सद् गुरु के समान हितकारी कोई नहीं है।

जेही खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव।
कहैं कबीर सुन साधवा, करू सतगुरु की सेवा॥

जिस मुक्ति को ब्रह्मा, सुर, नर, मुनि और देवता तक नहीं खोज पाये वह गुरू की सेवा से ही प्रापत हो सकती है।

केते पढी गुनि पचि मुए, योग यज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करे उपाय॥

कितने ही लोग शास्त्रों को पढकर, योग, यज्ञ और तप आदि करके ज्ञानी बनने का प्रयास करते हुए मी गए, परन्तु बिना सतगुरु के ज्ञान नहीं मिलता, चाहे कोई करोडों उपाय कर लो।

सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय।
भ्रम का भाँडा तोड़ी करि, रहै निराला होय॥

तभी मानो की सद् गुरु मिल गये हैं जब तुम्हारे हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाये, भ्रम और भ्रम समाप्त हो जाये।

कबीर साहेब ने गुरू के सद् गुरू होने को भी बहुत महत्व दिया है और यह कहा है कि गुरू सोच समझकर ही करना चाहिये। गुरू के सद्गुरू न होने पर शिष्य का बड़ा अहित भी हो सकता है।

जाका गुरु है आँधरा, चेला खरा निरंध।
अन्धे को अन्धा मिला, पड़ा काल के फन्द॥

जिसका गुरु ही अविवेकी है उसका शिष्य तो महा अज्ञानी होगा ही। अज्ञानी शिष्य को अज्ञानी गुरु मिल जाये तो दोनो ही काल पड़ गये।

गुरु कीजिए जानि के, पानी पीजै छानि ।
बिना विचारे गुरु करे, परे चौरासी खानि॥

पानी छान कर पीना चाहिए और गुरू सोच समझ कर बनाना चाहिए। जो बिना विचारे गुरू बनाता है उसे चौराही लाख योनियो में घूमना पड़ता है, अर्थात उसे मुक्ति नहीं मिलती है।

कबीर के दोहे यू-ट्यूब पर सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

संत कबीर की वाणी के कुछ और पहलू

कबीर एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोज़ा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे। कबीर की वाणी का संग्रह बीजक के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं- रमैनी, सबद और साखी। रमैनी' और 'सबद' गाए जाने वाले 'गीत या भजन' के रूप हैं। 'साखी' शब्द साक्षी शब्द का अपभ्रंश है। इसका अर्थ है - "आँखों देखी अथवा भली प्रकार समझी हुई बात।" कबीर की साखियाँ दोहों में लिखी गई हैं जिनमें भक्ति व ज्ञान के उपदेश हैं। कबीर ने उलटबांसियाँ भी कही हैं। पहली बार सुनने में प्राय: ये चौंकाने वाली व निर्थक जान पड़ती हैं, लेकिन इनका गहन अध्ययन करने पर इनका गूढ़ अर्थ समझ आता है और ये सार्थक लगती हैं।

कबीर ने आडंबर और पोंगापंथ की अलोचना बहुत अच्छे ढ़ंग से की है -

पाहन पुजे तो हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।
ताते या चाकी भली, पीस खाए संसार।।

पत्थर पूजने से यदि ईश्वर मिल जाये तो मैं पहाड़ की पूजा करूं। इससे तो चक्की अच्छी है जिसका पीसा हुआ आंटा सारा संसार खाता है।

मूंड मुंडाए हरि मिले, तो सब लैं मूंड मुडाय।
बार-बार के मूंडते, भेड़ न बैकुंठ जाय।।

यदि सर मुंडा लेने से ईश्वर मिल जाये तो सभी सर मुंडा लेंगे और बार-बार मूंडने के कारण भेड़ तो निश्चित ही बैकुंठ जायेगी।

कॉकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बॉग दे, बहिरा हुआ खुदाए।।

कंकड़-पत्थरों को जोड़ कर ऊंची सी मस्जिद बनाली है और उसपर चढ़कर मुल्ला ज़ोर से आवाज़ लगाता है, तो क्या खुदा बहरा हो गया है कि उसे साधारण आवाज़ सुनाई नहीं देती है?

माला फेरत जुग भया, मिटा ना मन का फेर।
कर का मन का छाड़ि के, मन का मनका फेर॥

माला फेरते हुए बहुत समय हो गया पर मेरा मन साफ नहीं हुआ इसलिये माला फेरने से कोई लाभ नहीं है, ईश्वर को पाना है तो अपने मन को साफ करो।

साखियां - यह कदाचित साक्षी का अपभ्रंश है। यह अच्छे काम करने की सीख देती हैं -

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो मन खोजा अपना, मुझ-सा बुरा न कोय।।

मैंने संसार में बुरे लोगों को खोजने का प्रयास किया तो कोई बुरा मिला ही नहीं, परंतु स्वयं मेरा मन ही सबसे बुरा निकला। तात्पर्य यह है कि आप भला तो जग भला।

सॉच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै सॉच है, ताके हिरदै आप।।

सच के समाल कोई तपस्या नहीं है और झूठ के बाराबर कोई पाप नहीं है। ईश्वर उसी हृदय में वास करते हैं जिस हृदय में सत्य का निवास है।

सोना, सज्जन, साधुजन, टूटि जुरै सौ बार।
दुर्जन कुंभ-कुम्हार के, एकै धका दरार।।

सज्जन सोने के समान होते हैं जो सौ बार भी टूटने से जुड़ जाता है, और दुर्जन घड़े के समान हैं जो एक ही धक्के से टेट जाता है और फिर नहीं जुड़ता।

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।।

अति किसी भी चीज में अच्छी नहीं है। न अति का बोलना अच्छा है और न अति का चुप रहना, जैसे अति वर्षा भी बुरी है और अति धूप भी।

काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगो कब्ब।

जो काम कल करना है उसे आज ही करो, और जो आज करना है उसे तुरंत करो। यदि पल भर में प्रलय आ गई तो फिर कब उस काम को करोगे। अर्थात भविष्य निश्चत नहीं है इसलिये जो करना है अभी कर लो।

निंदक नियरे राखिए, ऑंगन कुटी छवाय।
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।

बुराई करने वालों को अपने आंगन में ही कुटिया बनाकर अपने पास रखना चाहिये। अपनी निंदा सुनकर यदि हम स्वयं को सुधार लेते हें तो बिना पानी और साबुन के ही हमारा स्वभाव साफ (अच्छा) हो जायेगा।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सॉकरी, तामें दो न समाहिं।।

जब तक मेरा अहं था तब तक भगवान मुझे नहीं मिले, और अब भगवान मिल गये है तो मरा अहं चला गया है। प्रेम की गली इतनी संकरी होती है कि दोनो उसमें नहीं रह सकते।
जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ग्यान।
मोल करो तलवार के, पड़ा रहन दो म्यान।।

साधु की जाति नहीं पूछ चाहिये, उसका ज्ञान देखना चाहिये जैसे तलवार की धार का मोल करना उचित है म्यान का नहीं, जिसमे तलवार रखी जाती है।

सबद का एक उदाहरण नीचे दिया है जिसे भजन की तरह से गाया जाता है -

मन लागो मेरो यार फकीरी में॥
जो सुख पावो राम भजन में, सो सुख नाही अमीरी में ।
भला बुरा सब को सुन लीजै, कर गुजरान गरीबी में ॥
मन लागो मेरो यार फकीरी में ॥

प्रेम नगर में रहिनी हमारी, भलि बलि आई सबूरी में ।
हाथ में कूंडी, बगल में सोटा, चारो दिशा जगीरी में ॥
मन लागो मेरो यार फकीरी में ॥
आखिर यह तन ख़ाक मिलेगा, कहाँ फिरत मगरूरी में ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साहिब मिलै सबूरी में ॥
मन लागो मेरो यार फकीरी में ॥

यह भजन कालूराम बामनिया ने बहुत खूबसूरती से गाया है। अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके इसे यू-ट्यूब पर देखने के लिये नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

ऐसे ही एक और भजन देखिये। यह भजन रहस्यवाद का उत्तम उदाहरण है। इसमें चादर को ओढ़ने और ठीक प्रकार से रखने के बहाने शरीर, आत्मा और परमात्मा से मिलन की बातें कह दी गई हैं -

झीनी झीनी बीनी चदरिया ॥
काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ॥ १॥
इडा पिङ्गला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया ॥ २॥
आठ कँवल दल चरखा डोलै,पाँच तत्त्व गुन तीनी चदरिया ॥ ३॥
साँ को सियत मास दस लागे, ठोंक ठोंक कै बीनी चदरिया ॥ ४॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढी,ओढि कै मैली कीनी चदरिया ॥ ५॥
दास कबीर जतन करि ओढी, ज्यों कीं त्यों धर दीनी चदरिया ॥ ६॥

यह प्यारा भजन पंडित जसराज की आवाज़ में सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

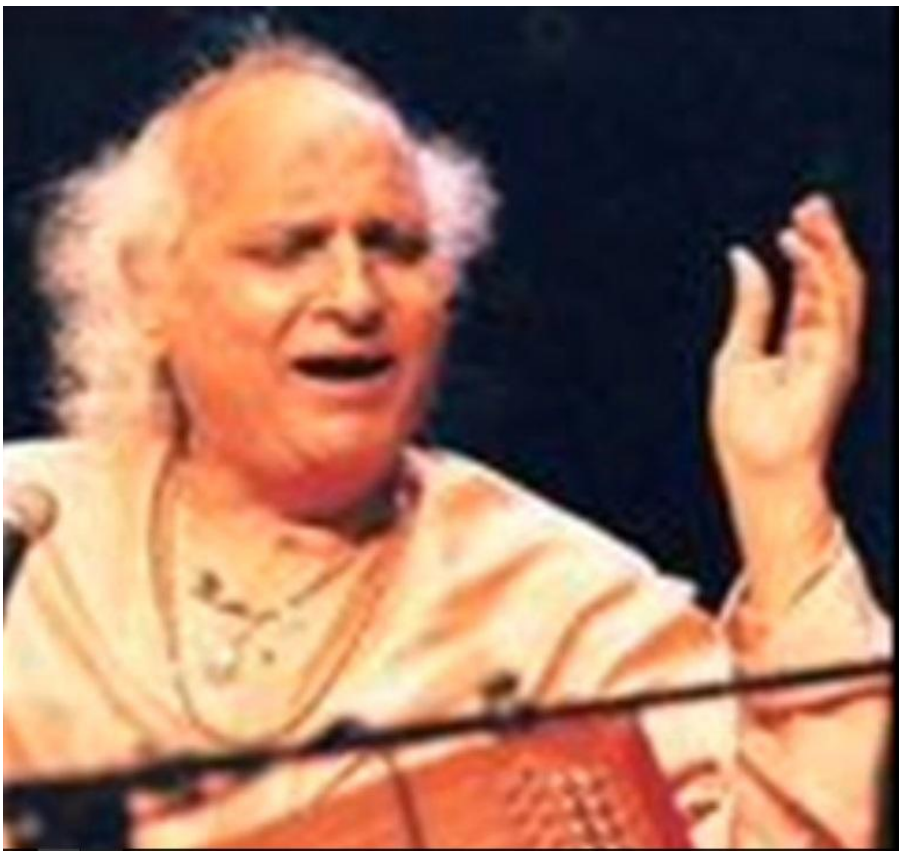

उलटबासियों के कुछ उदाहरण देखिये -

एकै कुँवा पंच पनिहारी। एकै लेजु भरै नो नारी॥
फटि गया कुँआ विनसि गई बारी। विलग गई पाँचों पनिहारी॥

शब्दार्थ- एक कुएँ पर नौ पनिहारी पहुँची। रस्सी तो एक थी, पर नौ नारियाँ पानी भर रही थीं। कुँआ फट गया और बारी का खेत नष्ट हो गया। पाँचों पनिहारी अलग-अलग चली गईं।

भावार्थ- अन्तःकरण रूपी कुआँ एक है। इसमें से नौ कषाय-कल्मष पनिहारी की तरह पानी भरती हैं। आत्मा का भगवत् समर्पण होने पर वह मोह ग्रस्त अन्तःकरण फट जाता है। इस कुएँ में से पानी खींचकर पनिहारियों ने जो शाक-भाजी की क्यारी उगाई थी सो नष्ट हो जाती है। सारा खेल बिगड़ जाने पर पाँच पनिहारी पाँचों इन्द्रियाँ अलग-अलग चली जाती हैं।

राजा के जिया डाहें, सजन के जिया डाहें
ईहे दुलहिनिया बलम के जिया डाहें ।

चूल्हिया में चाउर डारें हो हँड़िया में गोंइठी
चूल्हिया के पछवा लगावतड़ी लवना।
ईहे दुलहिनिया ...

अँखियाँ में सेनुर कइली हो, पिठिया पर टिकुली
धइ धई कजरा एँड़िये में पोतें।
ईहे दुलहिनिया ...

सँझवे के सुत्तल भिनहिये के जागें
ठीक दुपहरिया में दियना के बारें।
ईहे दुलहिनिया ...

कहेलें कबीर सुनो रे भइया साधो
हड़िया चलाइ के भसुरू के मारें
ईहे दुलहिनिया ...

शब्दार्थ - यह दुल्हन पति के जी में डा(दा)ह भरती है। चूल्हे में चावल डालती है जब कि पकाने वाले पात्र में उपला। चूल्हे में आगे से नहीं पीछे से लकड़ी लगाती है। आँख में सिन्दूर लगाती है और पीठ पर बिन्दी। रह रह एँड़ियों पर काजल पोतती है। साँझ को ही सो जाती है और सुबह उठती है। भरी दुपहर में दीपक जलाती है। हँड़िया चला कर अपने भसुर (पति का बड़ा भाई) को मारती है।

भावार्थ - बहुत से भक्तिकालीन कवियों ने परमात्मा-आत्मा में प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नी, प्रीतम-प्रेयसी का संबंध माना है. यहां भी लगता है कि जब आत्मा प्रभु के ध्यान लगी तो उसके कृत्य उलटबांसी को जन्म दे रहे हैं।

कबीर की उलटबासियां बिहार के लोकगीतों में रची बसी हैं। इसका एक उदाहरण - ‘‘साजन बचा ले आपन जान’’ भोजपुरी में यू-ट्यूब पर सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

रस की खान 'रसखान'

रसखान का जन्म सन् १५३३ से १५५८ के बीच दिल्ली के समीप पिहानी में हुआ था। कुछ और लोगों के मतानुसार यह पिहानी उत्तरप्रदेश के हरदोई जिले में है। मथुरा में इनकी समाधि है। उनका असली नाम सैयद इब्राहिम था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिन मुस्लिम हरिभक्तों के लिये कहा था, "**इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दू वारिए"** उनमें रसखान का नाम सर्वोपरि है। कहा जाता है कि रसखान ने भागवत का अनुवाद फारसी में किया। कृष्ण-भक्ति ने उन्हें ऐसा मुग्ध कर दिया कि गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा ली और ब्रजभूमि में जा बसे। सन् 1628 के लगभग उनकी मृत्यु हुई। सुजान रसखान और प्रेमवाटिका उनकी उपलब्ध कृतियाँ हैं। रसखान रचनावली के नाम से उनकी रचनाओं का संग्रह मिलता है। हिन्दी के कृष्ण भक्त तथा रीतिकालीन कवियों में रसखान का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।इनके काव्य में भक्ति, शृंगार रस दोनों प्रधानता से मिलते हैं। रसखान कृष्ण भक्त हैं और उनके सगुण और निर्गुण निराकार रूप दोनों के प्रति श्रध्दावनत हैं। रसखान के सगुण कृष्ण वे सारी लीलाएं करते हैं, जो कृष्ण लीला में प्रचलित रही हैं। यथा- बाललीला, रासलीला, फागलीला, कुंजलीला आदि।

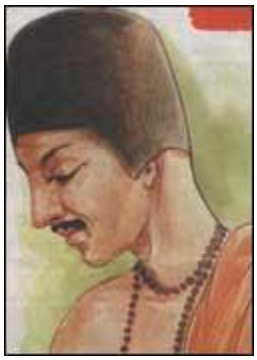

रसखान ने दोहे, सवैये और फाग गाये हैं। वर्णिक वृत्तों में 22 से 26 अक्षर के चरण वाले जाति छन्दों को सामूहिक रूप से हिन्दी में सवैया कहने की परम्परा है। अपने आराध्य के प्रति रसखान का लगाव इतना है कि सभी जन्मों और योनियों में वे उनके समीप ही रहना चाहते हैं-

मानुस हौं तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदीकूल कदम्ब की डारन॥

यदि मनुष्य बनू तो गोकुल गांव के ग्वलों के बीच रहूं, यदि पशु बनू तो नंद की गायें के बीच रहकर घास चरूं, पत्थर बनू तो उसी पहाड़ पर जिसे इंद्र के कोप से बचने के लिये कृष्ण में छत्र की तरह उठा लिया था और पक्षी बनू तो कालिंदी (यमुना) के किनारे कदम्ब की डालों पर बसेरा करूं।

निगुर्ण और सगुण, ज्ञान और प्रेम का ऐसा संगम कहीं और देखने को नहीं मिलेगा-

सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर गावै।
जाहि अनादि अनंत अखण्ड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रहे, पचिहारे तू पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

जिनकी महिमा शेषनाग, गणेश, महेश, सूर्य, और इंद्र लगातार गाते रहते हैं; वेदों ने जिन्हें अनादि, अनंत, अखंड, अछेद और अभेद बताया है; नारद, शुकदेव और व्यास ने जिन्हे पहचान कर संसार को पार कर लिया; उन्हीं भगवान कृष्ण को अहीर की छोरियां (लड़कियां) कटोरे भर छाछ पर नचाती हैं।

इस सुंदर भजन को अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे के फोटो पर क्लिक करके यू-ट्यूब पर सुनिये -

बालपन की ऐसी मनोहर छटा रसखान के काव्य में ही मिल सकती है-

धुरि भरे अति सोहत स्याम जू, तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैंजनी बाजति, पीरी कछोटी॥
वा छबि को रसखान बिलोकत, वारत काम कला निधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी॥

श्याम जी धूल से भरे हुए खेल रहे हैं, और सिर पर सुंदर चोटी बंधी हुई है। आंगन में इधर-उधर खेलने पर उनके पैरों में बंधी हुई पायल बज उठती है। कृष्ण ले पीले रंग की कछौटी (कच्छा) पहनी हुई है। रसखान कहते हैं कि कृष्ण के इस रूप को देख कर करोड़ों कमदेव और करोड़ो चंद्रमा वारे जा सकते हैं। इसके बाद बड़ी सुंदर घटना का वर्णन एक पंक्ति में किया गया है, कि कृष्ण को माखन रोटी खा रहे थे, उसे कौवा छीन ले गया, उसका भग्य कितना बड़ा है कि वह हरि के हाथ से माखन रोटी लेकर गया है।

वात्सल्य रस का एक और उत्कृष्ट उदाहरण देखिये-
आजु गई हुति भोर ही हों, रसखानि रई वटि नंद के भौनंहि।
बाको जियों जुगल लाख करोर, जसोमति को सुख जात कह्यो नहिं।
तेल लगाई लगाई के अजन, भौंहिं बनाई बनाई डिठौनहिं।
डालि हमेल निहारति आनन, वाराति ज्यों चुचकारत छोनहिं।

आज सुबह ही मैं नंद के घर गई थी। उनका पुत्र लाखो करोड़ो वर्षों तक जिये। यशोदा का सुख इतना अधिक है कि उसका वर्णन करना कठिन है। यशोदा पने पुत्र के तेल लगा रही है थीं, फिर आंखों में काजल लगाया, फिर भौंहें बनाईं और फिर डिठौना (नज़र से बचाने के लिये काला टीका) लगा दिया। उसके बाद हमेल (एक प्रकार की माला) पहना कर उसके मुख को निहारती रहीं और उसे बात-बार पुचकारती रही जैसे कोई गाय अपने बछड़े को पुचकारती है।

अब श्रंगार रस की बानगी देखिये -

काननि दै अँगुरी रहिहौं, जबही मुरली धुनि मंद बजैहै।
मोहिनि तानन सों , अटा चढ़ि गोधुन गैहै पै गैहै॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि, काल्हि कोई कितनो समझैहै।
माई री वा मुख की मुसकान, सम्हारि न जैहै, न जैहै, न जैहै॥

गोपियाँ कहती हें जब कृष्ण की मुरली की मधुर धुन बजेगी तो हो सकता है की धुन में मग्न होकर गायें भी अटारी पर चढ़कर गाने लगे परन्तु हम अपने कानों में अंगुली डाल लेंगीं ताकि हमें मुरली की धुन सुनाई न पड़े। लेकिन ब्रजवासी कह रहे हैं की जब कृष्ण की मुरली बजेगी तो उसकी धुन सुनकर, गोपियों की मुस्कान संभाले नही सम्भलेगी और उस मुस्कान से पता चल जाएगा की वे कृष्ण के प्रेम में कितनी डूबीं हैं।

मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं, गूंज की माल गरें पहिरौंगी।
ओढ़ि पितंबर लै लकुटी बन गोधन गवरनि संग फिरौंगी।।
भावतो वोही मेरो रसखानि सों तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी।।

गोपियां कृष्ण को रिझाने के लिये सिर के ऊपर मोरपंख रखने, गुंजों की माला पहनने, पीले वस्त्र धारण करने और वन में गायों और ग्वालों के संग भ्रमण करने को तैयार हैं, परंतु वे कहती हैं कि वे कृष्ण के होठों से लगी बांसुरी को अपने होठों से नही लगाएंगी।

बी.आर. चोपड़ा कृत टी.वी. सीरियल महाभारत में अभिनीत इस सुंदर भजन को अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके यू-ट्यूब पर देखें -

एक समै जमुना- जल में सब मज्जन हेत, धंसी ब्रज- गोरी।
त्यौं रसखानि गयौ मन मोहन लेकर चीर, कदंब की छोरी।
न्हाई जबै निकसीं बनिता चहुँ ओर चित, रोष करो री।
हार हियें भरि भखन सौ पट दीने लाला, वचनामृत बोरी।

चीरहरण का बड़ा ही नाटकीय ढ़ंग से वर्णन किया है। चीरहरण लीला अध्यात्म पक्ष में आत्मा का नग्न होकर माया के आवरणीय सांसारिक संस्कारों से पृथक होकर प्रभु से मिलना है। इसमें संपूर्ण की संपूर्णता है, जिसमें अपना कुछ नहीं रहता, सबकुछ प्रभु का हो जाता है। जमुना में नहाती हुई गोपियों का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि गोपियाँ नहाने जाती हैं और कृष्ण उनके वस्र लेकर कदंब के पेड़ पर चढ़ जाते हैं। नहाने के पश्चात् गोपियाँ चारों ओर अपने वस्र ढूँढ़ती है और क्रोध करती हैं परंतु उन्हें वस्त्र नहीं मिलते। वे थक- हार कर मीठे वचन बोलकर कृष्ण से अपने वस्र माँगती है।

रंग भरयौ मुस्कात लला निकस्यौ कल कुंज ते सुखदाई।
मैं तबहीं निकसी घर ते तनि नैन बिसाल की चोट चलाई।
घूमि गिरी रसखानि तब हरिनी जिमी बान लगैं गिर जाई।
टूट गयौ घर को सब बंधन छुटियो आरज लाज बडाई।।

गोपी अपने हृदय की दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि जब कृष्ण मुस्कुराते हुए कुंज से बाहर निकला तो संयोग से मैं भी अपने घर से निकली। मुझे देखते ही उसने मुझ पर अपने विशाल नेत्रों के प्रेम में पगे बाण चलाए मैं सह न सकी और जिस प्रकार बाण लगने पर हिरणी चक्कर खा कर भूमि पर गिरती है, उसी प्रकार मैं भी अपनी सुध-बुध खो बैठी। मैं सारे कुल की लाज और बडप्पन छोड कृष्ण को देखती रह गई।

फाग का वर्णन भी देखिये -

खेलत फाग लख्यौ पिय प्यारी को ता मुख की उपमा किहिं दीजै।
दैखति बनि आवै भलै रसखान कहा है जौ बार न कीजै।।
ज्यौं ज्यौं छबीली कहै पिचकारी लै एक लई यह दूसरी लीजै।
त्यौं त्यौं छबीलो छकै छबि छाक सौं हेरै हँसे न टरै खरौ भीजै।।

हे सखि! मैं ने कृष्ण और उनकी प्यारी राधा का फाग खेलते हुए देखा है, उस शोभा की कोई उपमा नहीं है। कोई ऐसी वस्तु नहीं जो उस स्नेह भरे फाग के दृश्य पर निछावर नहीं की जा सके। ज्यों ज्यों सुन्दरी राधा चुनौती दे देकर एक के बाद दूसरी पिचकारी चलाती हैं, वैसे वैसे छबीला कृष्ण उनके उस रंग भरे रूप को छक कर पीता हुआ वहीं खडा मुस्कुरा कर भीगता रहता है।

आवत लाल गुलाल लिए मग सुने मिली इक नार नवीनी।
त्यों रसखानि जगाइ हिये यटू मोज कियो मन माहि अधीनी।
सारी फटी सुकुमारी हटी, अंगिया दरकी सरकी रंग भीनी।
लाल गुलाल लगाइ के अंक रिझाइ बिदा करि दीनी।

गोपियाँ फाल्गुन के साथ कृष्ण के अवगुणों की चर्चा करते हुए कहती हैं कि कृष्ण ने होली खेल कर हम में काम- वासना जागृत कर दी हैं। हमारी सारी फट गई, अंगिया सरक गई और रंग में भीग गई, और हमें रंग गुलाल लगा कर और रिझाकर कृष्ण ने बिदा कर दिया।

रसखान के कुछ दोह भी देखिये को उन्होने निर्गुण प्रेम के संबंध में लिखे हैं -

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोइ।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोइ॥
कमल तंतु सो छीन अरु, कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टढ़ौ बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार॥

सभी प्रेम-प्रेम कहते हैं, परंतु प्रेम को कोई नहीं जानता, यदि जानता तो मृत्यु पर रोता क्यों। प्रेम कमल के तने की तरह मुलायम और तलवार की धार की तरह तेज़ है। प्रेम का रास्ता बहुत सीधा भी है और कई बार टेढ़ा भी है।

प्रेम अगम अनुपम अमित सागर सरिस बखान।
जो आवत यहि ढिग बहुरि जात नाहिं रसखान।
आनंद- अनुभव होत नहिं बिना प्रेम जग जान।
के वह विषयानंद के ब्राह्मानंद बखान।

प्रेम सागर के समानन अनुपम और विस्त्रत है। जो एक बार प्रेम के रास्ते पर आ गया वह फिर वापस नहीं जाता है। बिना प्रेम के आंनद का अनुभव नहीं होता। विषयानंद का बखान जिस प्रकार करे उसी प्रकार ब्रह्मानंद होता है।

ज्ञान कर्म रु उपासना सब अहमिति को मूल।
दृढ़ निश्चय नहिं होत बिन किये प्रेम अनुकूल।
काम क्रोध मद मोह भय लोभ द्रोह मात्सर्य।
इन सब ही ते प्रेम हे परे कहत मुनिवर्य।

बिना प्रेम किये ज्ञान, कर्म, उपासना आदि से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। मुनि लोग कहते हैं कि काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह और मत्सर; प्रेम इन सभी से परे है।

रसखान के पदों को अर्थ सहित सुनिये यू-ट्यूब पर इस दुर्लभ वीडियो में। सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे के फोटो पर क्लिक करें -

अब्दुर्रहीम खाने-खाना का बहु-आयामी काव्य

रहीम का जन्म संवत् १६१३ ई. लाहौर में हुआ था। उनके पिता बैरम खाँ सम्राट हुमायूँ के दरबारी थे। स्वयं हुमायूं ने उनका नाम "रहीम' रखा। बैरम खान अकबर के गुरू थे, परंतु बाद में मतभेद हो जाने के कारण अकबर ने उन्हें हज करने के बहाने दिल्ली से भेज दिया। रास्ते में बैरम खान की हत्या कर दी गई। रहीम की माता उन्हें लेकर अकबर के दरबार में लौट आईं। रहीम अकबर के दरबार में महत्वपूर्ण स्थान पर रहे। अकबर ने उन्हें मुस्तकिल (स्थाई) मीर अर्ज नियुक्त किया था। जनता की अर्जियां बादशाह के पास मीर अर्ज के माध्यम से ही जाती थीं इसलिये यह बड़ा महत्वपूर्ण पद था। उन्हें शहजादा सलीम को पढ़ाने की जिम्मेदारी भी दी गई थी। रहीम ने मुख्य रूप से बृज भाषा और अवधी में लिखा है, परंतु उनके संस्कृत के श्लोक भी मिले हैं और उन्होने फारसी में आइने अकबरी भी लिखा है, तथा बाबर की आत्मकथा तुजके बाबरी का तुर्की से फारसी में अनुवाद भी किया है। रहीम के प्रसिध्द ग्रंथ रहीम दोहावली या सतसई, बरवै नायिका भेद, श्रृंगार सोरठा, मदनाष्टक, राग पंचाध्यायी, नगर शोभा आदि हैं। रहीम के काव्य में नीति, भक्ति, प्रेम और श्रृंगार का सुंदर समावेश है।

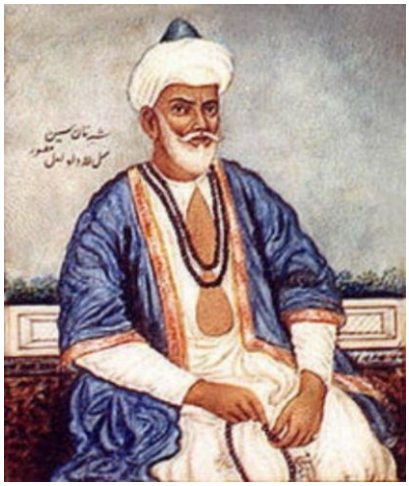

रहीम के कुछ नीति विषयक दोहे देखिये -

रहिमन देख बड़ेन को, लघु न दीजिये डार।
जहां काम आवे सुई, कहा करे तरवार॥

रहीम कहते हैं कि बड़ो को देखकर छोटों को छोड़ नहीं देना चाहिये क्योंकि जहां पर छोटे काम आ जाते हैं वहां बड़े काम नहीं आते जैसे सुई का काम सिलना है और यह काम तलवार से नहीं हो सकता।

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग॥

रहीम करते हैं कि अच्छी प्रकृति के लोग बुरों की संगत में भी नहीं बिगड़ते हैं जैसे सांप लिपटे रहने पर भी चंदन के पेड़ो में विष नहीं व्यापता है।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरउ चटकाय।
टूटै से फिर ना मिलै, मिलै गांठ परि जाय॥

रहीम कहते हैं कि प्रेम का धागा तोड़ना नहीं चाहिये क्योंकि एक बार टूट जाने से वह फिर जुड़ता नहीं है और जुड़ भी जाये तो भी गांठ तो पड़ ही जाती है अर्थात मन में कुछ कड़वाहट रह जाती है।

जो बड़ेन को लघु कहे, नहिं रहीम घटि जांहि।
गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नांहि॥

यदि किसी बड़े को छोटा कह दिया जाये तो वह छोटा नहीं हो जाता, जैसे कृष्ण को गिरिधर (पहाड़ उठाने वाला) कहने के स्थान पर मुरलीधर (बांसुरी बजाने वाला) कह देने से वे कुछ दुख नहीं मानते।

आब गई, आदर गया, नैनन गया सनेहि।
ये तीनों तब ही गये, जबहि कहा कछु देहि॥

तेज, इज्जत और प्रेम तीनो ही कुछ मांगते ही समाप्त हो जाते हैं, अत: मांगना नहीं चाहिये।

रहिमन वे नर मर गये, जे कछु माँगन जाहि।
उनते पहिले वे मुये, जिन मुख निकसत नाहि॥

रहीम कहते हैं कि जो कही मांगने जाते है वे मरे हुए के समान हैं, परंतु जो मांगने वाले को मना कर देते हैं वे तो उनसे भी गए-गुज़रे हैं।

रहिमन विपदा ही भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय॥

रहीम करते हैं कि थोड़े दिनो की विपत्ति भी अच्छी है क्योंकि इससे इस दुनिया में अच्छे-बुरे का ज्ञान हो जाता है।

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥

खजूर के पेड़ की तरह बड़ा होने का क्या लाभ। यह यात्रियों को छाया तो देता नहीं और फल भी बहुत दूर लगे होने के कारण कोई इन्हें खा नहीं सकता। अर्थात बड़ा वही है जो दूसरों का भला करे।

रहिमन चुप हो बैठिये, देखि दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं देर॥

रहीम करते हें कि बुरे दिन आने पर चुप होकर बैठ जाना अच्छा है। जब अच्छे दिन वापस आयेंगे तो कम बनते देर नहीं लगेगी।

फिल्म अंखियों के झरोखों से के यह गीत यू-ट्यूब पर देखने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें। गीत में पहले 2 दोहे रहीम के हैं -

भक्ति रस से परिपूर्ण दोहे देखिये -

तैं रहीम मन आपुनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लागो रहै, कृष्णचंद्र की ओर।।

मैने अपना मन चकोर की तरह बना लिये है जो राज दिन भगवान कृष्ण रूपी चंद्रमा की ओर ही लगा रहता है।

गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव।।
भवसागर को पार करने के लिये और जगत से उध्दार के लिये राम की शरण में जाना ही एकमात्र उपाय हैं।

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जा पर बिपदा पड़त है, सो आवत यह देस।।

अवध के राजा राम चित्रकुट में रहते हैं। जब किसी पर विपत्ति पड़ती है तो वह उन्ही उन्हीकी शरण में जाता हैं।

अच्युत-चरण-तरंगिणी, शिव-सिर-मालति-माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव-भाल।।

हे गंगा मां आप भगवान विष्णु के चरण पखारती हैं और भगवान शंकर के सिर पर मालती के फूलों की माला के समान शोभित हैं। मुझे आप हरि न बनाना, शिव बनाना जिससे मैं आपको मस्तक पर धारण करूं।

महेन्द्र कपूर और अनुपमा देशपांडे के गाये रहीम के भजन यू-ट्यूब पर सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

कुछ श्रंगार रस के सोरठे देखिये -

गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहिं, बुझाय, भभकि भभकि बरि-बरि उठै।।

आग लेने आई उस सुंदर स्त्री को देख कर हृदय में आग लग गई है जो बुझाने से बुझती नहीं और बार-बार भभक कर जल उठती है।

तुरुक गुरुक भरिपूर, डूबि डूबि सुरगुरु उठै।
चातक चातक दूरि, देह दहे बिन देह को।।

इस दोहे में कुटभाषा का बड़ा सुंदर प्रयोग किया गया है। तुरकों के गुरू का अर्थ है पीर पर यहां उसका अर्थ है पीड़ा। सुरगुरू हैं बिरहस्पति यहां तात्पर्य है विरह से। इसी प्रकार चातक पी-पी की आवाज़ करता है। यहां पी का अर्थ है पति। बिन देह अनंग कामदेव हैं। इस प्रकार इस दोहे का भवार्थ है कि मेरे पति दूर हैं इसलिये मेरा पूरा शरीर विरह की पीड़ा में डूबा हुआ है और कामदेव मेरे शरीर को जला रहे हैं।

दीपक हिए छिपाय, नवल वधू घर ले चली।
कर विहीन पछिताय, कुच लखि जिन सीसै धुनै ।।

नववधु अपनी छाती में दिये को छिपा कर घर जा रही है। दिये को बड़ा पछतावा हो रहा है और वह सिर धुनता हुआ सोच रहा है कि मेरे हाथ नहीं हैं, नहीं तो मैं इसकी छाती को छूकर आनंद पाता।

पलटि चली मुसुकाय दुति रहीम उपजात अति।
बाती सी उसकाय मानों दीनी दीन की ।।

वह पलटी और मुस्कुराकर चली गई, और इससे उसकी आभा ऐसे बढ़ गई जैसे दिये की बाती को कुछ ऊपर उठा देने से प्रकाश बढ़ जाता है।

यक नाही यक पी हिय रहीम होती रहै।
काहु न भई सरीर, रीति न बेदन एक सी ।।

हृदय की पीड़ा बढ़ती घटती रहती है। यह शरीर की पीड़ा की तरह सदा एक समान क्यों नहीं रहती है?

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कैधों शालिग्राम, रूपे के अरघा धरे ।।

प्रेमिका की सफेद आंखों में काली पुतली ऐसी सुंदर लगती है जैसे सफेद कमल पर काला भौंरा बैठा हो या चांदी के अरघे में शलिग्राम रखे हों।

बरवै नायिका भेद में विभिन्न प्रकार की नायिकाओं के बड़े अच्छे उदाहरण दिये गये हैं-

<u>उत्तमा नायिका</u>

लखि अपराध पियरवा, नहिं रिस कीन।
बिहँसत चनन चउकिया, बैठक दीन।।

उत्तम नायिका कैसी है - अपने पति का अपराध देखकर भी क्रोध नहीं करती। हंसते हुए चंदन की चौकी पर बिठाती है।

<u>मुग्धा नायिका</u>

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार।।

लागे आन नवेलियहि, मनसिज बान।
उसकन लाग उरोजवा दृग तिरछान।।

वह लहरिया की साड़ी पहने हुए है जिसपर मोतियों की किनारी लगी हुई है, और बाल बिखरे हुए हैं। उसके उरोज़ (छातियां) कुछ उकसने लगीं है (बड़ी हो रही हैं) और वह कामदेव के बाण चलाती हुई तिरछी नज़र से देख रही है।

पावर्ती दत्ता व्दारा कथक नृत्य में मुग्धा नायिका का प्रदर्शन यू-ट्यूब पर देखने के लिये अपने डिवाइस पर इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

<u>अज्ञातयौवना - नायिका (जिसे अपने यौवन का पता नहीं है)</u>

कवन रोग दुहुँ छतिया, उपजे आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय।।

नायिका सोचती है कि यह मुझे कौन सा रोग हो गया है कि मेरी दोनो छातियां बढ़ रही हैं और कलेजा बार-बार दुखता है, पीड़ा कम नहीं होती।

<u>ज्ञातयौवना नायिक (जिसे अपने यौवन का पता है)</u>

औचक आइ जोबनवाँ, मोहि दुख दीन।
छुटिगो संग गोइअवॉ नहि भल कीन।।

नयिका सोचती है कि मुझे दुख देने के लिये यौवन अचानक ही आ गया। मेरी सखियों का साथ भी छूट गया, यह इसने अच्छा नहीं किया।

<u>प्रौढ़ रतिप्रीता नायिका</u>

भोरहि बोलि कोइलिया, बढ़वति ताप।
घरी एक घरि अलवा, रह चुपचाप।।

बहुत भोर में बोलकर कोयल विरह-ताप बढ़ा रही है—अरे सखि, एक घड़ी तो चुप रह (प्रीतम आनेवाले हैं)।

मदानाष्टक

मदनाष्टक श्रंगार काव्य तो है ही इसमें रहीम ने संस्कृत, अवधी फारसी और खड़ी बोली का प्रयोग इस प्रकार से किया है कि बीच में छंद नहीं टूटता तक नहीं। अनेक भाषाओं के एक साथ प्रयोग का दूसरा उदाहरण अमीर खुसरो हैं। मदनाष्टक से कुछ उदाहरण देखिये-

दृष्ट्वा तत्र विचित्रताम् तरुलता, मैं गया था बाग में।
क्वचित् तत्र कुरंगशावकनयनी, गुल तोड़ती थी खड़ी॥

मैं उस विचित्र तरु लता (बेल) को देखकर बाग में गया। वहां पर हिरण के शावक (बच्चे) जैसी सुंदर आखों वाली फूल तोड़ती हुई खड़ी थी।

शरद-निशि-निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन-बन-निकुंजे कान्ह बंसी बजाई॥
रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागी।
मदन-शिरसि भूय: क्या बला आन लागी ।।

शरद ऋतु में पूर्णिमा के चांद की चमक की तरह सघन वन के निकुंज में कृष्ण ने बांसुरी बजाई। इस बांसुरी की तान को सुनकर रति, पति, पुत्र, नींद, और भगवान को भी छोड़कर गोपियां वन की ओर भागने लगीं। मदन (कामदेव) के तीर से कैसी बला आ गई है।

तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारैं।
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारैं।।
मधुर मधुप हेरैं माल मस्ती न राखें।
विलसति मन मेरे सुंदरी श्याम आँखें ।।

सुंदरी की आंखें नदी में चलने वाली नाव की तरह है, तीर की तरह कटीली हैं, कमल की तरह बड़ी हैं और दिल को भेदने वाली हैं। भौंरे की तरह मेरे विलसित (प्रसन्न) मन को यह सुंदरी की यह मस्ती भरी काली आंखें हर लेती हैं।

रहीम ने ज्योतिष शास्त्र पर भी **'खेट-कौतुकम्'** नाम का ग्रंथ लिखा है। इसकी भाषा संस्कृत और फ़ारसी की खिचड़ी है और भाषा-कौतुक की दृष्टि से नायाब है। इसका एक पद नीचे दिया गया है -

यदा चश्मख़ाने भवेदाफ़ताबस्तदा ज्ञानहीनोऽथ गुस्साबरूदम्।
सदा संगदिल सख़्तगो द्रव्यहीन: कुवेषो सदा स्यान्नहोशोहवासम्॥

जब जातक के नेत्र-स्थान में सूर्य हो तो वह ज्ञान-हीन और बहुत गुस्सेवाला होता है। स्वभाव से हमेशा संगदिल और कठोर रहता है, धन-हीन होता है, बुरा वेश धारण करता है और उसे होशोहवास नहीं रहता।

रहीम ने **शुध्द संसकृत मे श्लोक** भी लिखे हैं। कुछ उदाहरण नीचे देखिये -

आनीता नटवन्मया तब पुर; श्रीकृष्ण! या भूमिका।
व्योमाकाशखखांबराब्धिवसवस्त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि।।
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष्य भगवन् स्वप्रार्थित देहि मे।
नोचेद् ब्रूहि कदापि मानय पुरस्त्वेतादृशीं भूमिकाम् ।।

हे श्रीकृष्ण! आपकी प्रसन्नता के लिये मैं नट की भांति चौरासी लाख रूप (योनियां) धारण करता रहा हूं। हे परमेश्वर! यदि आप इससे प्रसन्न हुए हों तो मैं आपसे माँगता वरदान दीजिए और प्रसन्न नहीं हों तो ऐसी आज्ञा दीजिए कि मैं फिर कभी ऐसे स्वाँग धारण कर इस पृथ्वी पर न लाया जाऊँ।

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा,
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसे मनसे च तुभ्यं,
दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण।।

हे कृष्ण समुद्र आपका घर है, लक्ष्मी आपकी पत्नी हैं, इसलिये हे जगदीश्वर! आपको देने योग्य क्या बचा? राधा जी ने आपके मन को हर लिया है, वही मैं आपको देता हूँ, उसे ग्रहण कीजिए।

रहीम की प्रतिभा को प्रणाम है।

सूरदास

सूरदास का जन्म 1478 में मथुरा के निकट रुनकता गांव में हुआ। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। उनकी मृत्यु पारसौली ग्राम में हुई। सूर भक्तिकाल के कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वोत्कृष्ट कवि थे। उन्होंने मूलत: वात्सल्य रस, श्रंगार रस और शांत रस में रचनाएं की हैं। उनके विनय के पद भी अव्दितीय हैं। भ्रमरगीत मे वियोग का अतिसुंदर चित्रण है। इसमें गोपियों व्दारा उध्दव की हंसी उड़ाने तथा व्यंग्य करने के भी बहुत अच्छे प्रसंग हैं। सूर का श्रंगार अत्यंत स्वच्छ तथा भक्ति से मिला हुआ है। आचार्य हज़ारी प्रसाद व्दिवेदी ने उनके संबंध में लिखा है - "सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है।" सूरदास जी ने कुछ दृष्टकूट पद भी लिखें हैं जिने अर्थ गूढ़ हैं। सूरदास जी के पदों की एक विशेषता यह भी है कि वे गाये जा सकते हैं और इन्हें अनेक प्रसिध्द गायकों ने शस्त्रीय रागों में गाया है। सूरदास जी के प्रमुख ग्रंथ सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयंती और ब्याहलो माने गये हैं, जिनमें अंतिम दो उपलब्ध नहीं हैं। कीहे हैं कि सूरसागर में सवा लाख पद थे, परन्तु अब लगभग आठ हज़ार ही मिलते हैं। कुछ लागों का मानना है कि सूर जन्म से अंधे थे, परंतु अनेक विव्दान इससे सहमत नहीं हैं क्योंकि कोई जन्म से अंधा व्यक्ति प्रकृति का इतना सुंदर चित्रण नहीं कर सकता।

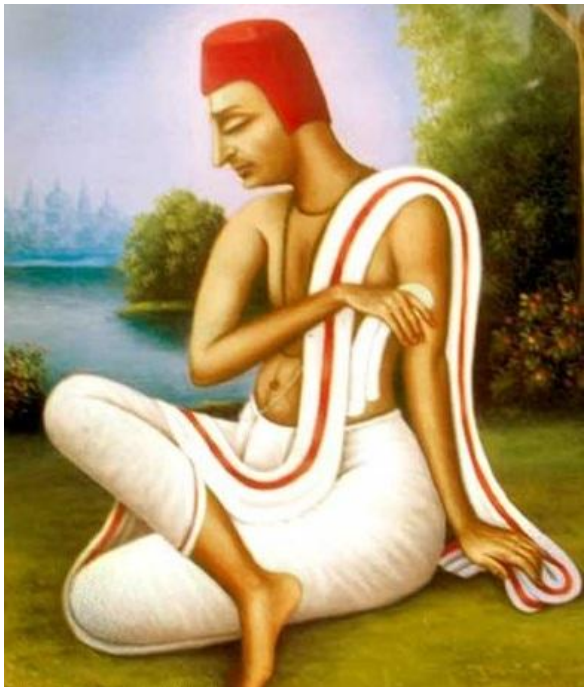

<u>सूर के पदों में वात्सल्य</u> -

राग धनाक्षरी में सुंदर पद देखिये -

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै दुलरावै मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहें न आनि सुवावै।
तू काहै नहिं बेगहिं आवै तोकौं कान्ह बुलावै॥
कबहुं पलक हरि मूंदि लेत हैं कबहुं अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि करि करि सैन बतावै॥
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ सो नंद भामिनि पावै॥

इस सुंदर लोरी पर पद्मश्री गुरु रंजना गौहर का नृत्य यू-ट्यूब पर देखने के लिये अपनी डिवाइस पर इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

<u>कृष्ण की बाललीला</u> -

राग बिलावल में यह पद है -

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए॥
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिए॥
कठुला कंठ वज्र केहरि नख राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख का सत कल्प जिए॥

इसे यू-ट्यूब पर देखने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

राग रामकली में एक और पद -

मैया कबहुं बढ़ैगी चोटी।
किती बेर मोहि दूध पियत भइ यह अजहूं है छोटी॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत जैहै नागिन-सी भुई लोटी॥
काचो दूध पियावति पचि पचि देति न माखन रोटी।
सूरदास त्रिभुवन मनमोहन हरि हलधर की जोटी॥

इसे भरतनाट्यम नृत्य में यू-ट्यूब पर देखने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

राग देव गंधार में सुंदर पद -

कहन लागे मोहन मैया मैया।
नंद महर सों बाबा बाबा अरु हलधर सों भैया॥
ऊंच चढि चढि कहति जशोदा लै लै नाम कन्हैया।
दूरि खेलन जनि जाहु लाला रे! मारैगी काहू की गैया॥
गोपी ग्वाल करत कौतूहल घर घर बजति बधैया।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कों चरननि की बलि जैया॥

सूर के पदों में श्रंगार रस के कुछ अद्भुद उदाहरण देखिये -

राग तोड़ी में निबध्द यह पद है -

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहां रहति काकी है बेटी देखी नहीं कहूं ब्रज खोरी॥
काहे कों हम ब्रजतन आवतिं खेलति रहहिं आपनी पौरी।
सुनत रहति स्त्रवननि नंद ढोटा करत फिरत माखन दधि चोरी॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातनि भुरइ राधिका भोरी॥

शुभा मुद्गल की मधुर आवाज में इस गीत को गाना डाट काम पर सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके यहां क्लिक करें

और एक पद -

खेलौ जाइ स्याम संग राधा।
यह सुनि कुंवरि हरष मन कीन्हों मिटि गई अंतरबाधा॥
जननी निरखि चकित रहि ठाढ़ी दंपति रूप अगाधा॥
देखति भाव दुहुंनि को सोई जो चित करि अवराधा॥
संग खेलत दोउ झगरन लागे सोभा बढ़ी अगाधा॥
मनहुं तडित घन इंदु तरनि ह्वै बाल करत रस साधा॥
निरखत बिधि भ्रमि भूलि पर्यौ तब मन मन करत समाधा॥
सूरदास प्रभु और रच्यो बिधि सोच भयो तन दाधा॥

<u>सूरदास के विनय और भक्ति के पद</u> -

प्रभू! जी मोरे औगुन चित न धरौ ।
सम दरसी है नाम तुम्हारौ , सोई पार करौ ॥
इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ ॥
सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ ॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ ॥
जब मिलिगे तब एक बरन ह्वै, गंगा नाम परौ ॥
तन माया जिव ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ॥
कै इनकौ निर्धार कीजिये, कै प्रन जात टरौ ॥

पुरुषोत्तम दास जलोटा का गाया यह गीत यू-ट्यूब पर सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

राग बिलावल -

चरन कमल बंदौ हरि राई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै आंधर कों सब कछु दरसाई॥
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चले सिर छत्र धराई ।
सूरदास स्वामी करुनामय बार-बार बंदौं तेहि पाई ॥

ग्वालियर घराने के श्री वासुदेव हर्ष जी का जैसलमेर की एक कंसर्ट में गाया गया यह गीत यू-ट्यूब पर सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

राग कन्हार -

सो रसना जो हरिगुन गावै।
नैननि की छवि यहै चतुरता जो मुकुंद मकरंदहिं धावै॥
निर्मल चित तौ सो सांचो कृष्ण बिना जिहिं और न भावै।
स्रवननि की जु यहै अधिका सुनि हरि कथा सुधारस प्यावै॥
कर तै जै स्यामहिं सेवैं चरननि चलि बृन्दावन जावै।
सूरदास जै यै बलि ताको जो हरिजू सों प्रीति बढ़ावै॥११॥

संध्या मुखर्जी जी का यह भजन यू-ट्यूब पर सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

<u>सूर के पदों में वियोग श्रंगार</u> -

राग रामकली -

उधो मन नाहीं दस बीस।
एक हुतो सो गयौ स्याम संग को अवराधै ईस॥
सिथिल भं सबहीं माधौ बिनु जथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकिरही आसा लगि जीवहिं कोटि बरीस॥
तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के सकल जोग के ईस।
सूरदास रसिकन की बतियां पुरवौ मन जगदीस॥

किसी गोपी को यह बात गीत में उधो को सुनाते हुए यू-ट्यूब पर देखने के लिये अपनी डिवाइस पर इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

राग सारंग -

ऊधो मन माने की बात।
दाख छुहारो छांड़ि अमृतफल बिषकीरा बिष खात॥
जो चकोर कों दे कपूर को तजि अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठ में बंधत कमल के पात॥
ज्यों पतंग हित जानि आपुनो दीपक सो लपटात।
सूरदास जाकौ जासों हित सो ताहि सुहात॥

राग काफी -

निरगुन कौन देश कौ बासी।
मधुकर कहि समुझा सौंह दै बूझति सांच न हांसी॥
को है जनक जननि को कहियत कौन नारि को दासी।
कैसो बरन भेष है कैसो केहि रस में अभिलाषी॥
पावैगो पुनि कियो आपुनो जो रे कहैगो गांसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठगो-सौ सूर सबै मति नासी॥

<u>सूरदास के दृष्टकूट पद</u> -

कहत कत परदेशी की बात.
मंदिर अर्ध अवधि हरि बदी गयो हरि आहार चली जात.
अजया भख अनुसारत नाही कैसे के रैन सिरात.
शशि रिपु बरस भानु रिपु जुग सम हर रिपु कीन्हो घात.
मघ पंचक लेई गयो सांवरो ताते जी अकुलात.
नखत वेद ग्रह जोरी अर्ध करी सोई बनत अब खात.
सूर दास वश भई विरह के कर मीजे पछितात.

<u>यह पद राधा के विरह का कूट भाषा मे वर्णन है</u> -

<u>पहले शब्दों के कूट अर्थ देखें</u> -

परदेशी - कृष्ण (क्योंकि कृष्ण परदेश चले गये थे)

मंदिर अर्ध (आधा घर जिसे बृज भाषा में "पाख" कहते है अत: इसका अर्थ हुआ "पक्ष" या पंद्रह दिन)

हरि आहार- हरि का एक सिंह भी होता है - सिंह का आहार मांस होता है - मांस का तात्पर्य है महीना

अजया भख - अजया का अर्थ है बकरी - बकरी का भाख या भोजन है पत्ती - यहां तात्पर्य है पत्री या चिट्ठी

शशि रिपु- अर्थात चन्द्रमा का शत्रु - दिन का समय - चन्द्रमा दिन में छिप जाता है

भानु रिपु - अर्थात सूर्य का शत्रु - रात - सूर्य रात में दिखाई नहीं देता है

हर रिपु - शिव के शत्रु - कामदेव

मघ पंचक - मघा नक्षत्र से पांचवां - तो मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त एवं चित्रा - अर्थात मघा नक्षत्र से पांचवां चित्रा नक्षत्र हुआ - चित्रा अर्थात चित्त

नखत वेद ग्रह जोरी अर्ध करी - नक्षत्र सत्ताईस होते है, वेद चार होते है, ग्रह नौ होते है - तो सत्ताईस, चार एवं नौ जोड़ने पर चालीस हुए - अब उसका अर्ध करी अर्थात उसका आधा या दूसरे शब्दों में चालीस का आधा बीस - बीस या विष या जहर

<u>इस प्रकार इस पूरे पद का अर्थ हुआ</u> -

कोई तो कृष्ण का हाल बताता। पंद्रह दिन का वादा कर गए थे किन्तु एक महीना बीत गया अब तक नहीं आये। चिट्ठी भी नहीं लिखते। एक एक दिन एक वर्ष के समान और एक एक रात एक युग के समान बीत रहे हैं। ऊपर से कामदेव भी सता रहे है। कृष्ण मेरा चित्त (मन) भी ले गये इस कारण जी और भी ज्यादा अकुला रहा है। कहीं से विष मिल जाये तो उसे खाकर प्राण त्याग दूं। सूरदास जी कहते है कि राधा विरह से हाथ मल मल कर पछता रही हैं।

अमीर खुसरो

अमीर खुसरो हिन्दवी या हिन्दी के पहले कवि माने जाते हैं। उनका वास्तविक नाम अबुल हसन था। उन्हें अमीर की उपाधि जलालुद्दीन खिलजी ने दी थी। सुल्तान कैकुबाद ने उन्हें मुलुकशुअरा (राष्ट्रकवि) की उपाधि दी थी। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जिले के पटयाली गांव में हुआ था। उनके पिता सैफुद्दीन, लाचन जाति के तुर्क थे। वे 4 वर्ष की आयु में दिल्ली आ गये थे। 8 वर्ष की आयु में वे हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य बन गये थे। वे 20 वर्ष की आयु तक कवि के रूप में बहुत प्रसिध्द हो गये थे। वे दिल्ली सल्तनत के अनेक सुल्तानों के दरबार में रहे। वे फारसी, तुर्की, संस्कृत, अरबी, हिन्दी आदि के ज्ञाता थे। हिन्दी के प्रति उनका बड़ा प्रेम था। एक स्थान पर उन्होने कहा है - **तुर्क हिन्दुस्तानियम मन हिंदवी गोयम जवाब** अर्थात् मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ -, हिन्दवी में जवाब देता हूँ। उन्होने हिन्दवी के प्रेम में यह भी कहा है –

चूं मन तूतीहिन्दम अर रासत पुर्सी-ए-,

ज़मन हिन्दवी पुर्स ता नग्ज गोयम।

अर्थात अगर सही समझो तो मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ अगर तुम मुझसे मीठी बातें करना .चाहते हो तो हिन्दवी में बात करो।

हज़रज निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य होने के नाते वे सूफी थे जिसका प्रभाव उनकी कविता में साफ दिखता है। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया पर उनकी भक्ति इतनी थी कि उनकी मृत्यु पर अमीर खुसरो ने कहा -

गोरी सेवे सेज पर डारे केस।
चल ख़ुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस।

इसे अपनी डिवाइस पर इंटरनेट चालू करके नीचे के फोटो पर क्लिक करके यू-ट्यूब पर देखें -

हज़रत निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु के 6 महीने के भीतर अमीर खुसरो की मृत्यु भी हो गई। उनकी मज़ार भी उनके गुरू हज़रत निजामुद्दीन औलिया की मज़ार के पास ही है। अमीर खुसरो ने शायरी में गज़ल और कव्वाली को जन्म दिया। इसी प्रकार संगीत में सितार और तबला वाद्य यंत्र भी उन्हीं की बनाये हुए हैं। अमीर खुसरो के गीत, गज़ल, पहेलियां, दोहे, ढ़कोसले, दुसुखने, उलटबासियां आदि प्रसिध्द हैं। उनकी मुख्य काव्य रचनायें तुहफा-तुस-सिग़र, वसतुल-हयात, गुर्रातुल-कमाल, नेहायतुल-कमाल आदि हैं। अमीर खुसरो की कविता भारत के लोक साहित्य का अभिन्न अंग है।

<u>अमीर खुसरो के काव्य के कुछ उदाहरण</u> -

<u>कव्वाली</u> - यह सूफी परंपरा के अंर्तगत भक्ति संगीत की प्रमुख धारा है जिसे अमीर खुसरो ने प्रारंभ किया था। भारत में यह बहुत लोकप्रिय है। अमीर खुसरो की एक प्रसिध्द कव्वाली देखिये -

छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाइके
प्रेम भटी का मदवा पिलाइके
मतवारी कर लीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके
गोरी गोरी बईयाँ, हरी हरी चूड़ियाँ
बईयाँ पकड़ धर लीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके
बल बल जाऊं मैं तोरे रंग रजव
अपनी सी रंग दीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके
ख़ुसरो निजाम के बल बल जाए
मोहे सुहागन कीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके
छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाइके॥

नुसरत फतेह अली खान से यु-ट्यूब पर इसे सुने अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करने के बाद नीचे की फोटो को क्लिक करके -

<u>गीत</u> -

इस गीत में एक पुत्री की मन:स्थिति का बहुत सुंदर वर्णन किया गया है -

काहे को ब्याहे बिदेस,
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

भैया को दियो बाबुल महले दो-महले
हमको दियो परदेस
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

हम तो बाबुल तोरे खूँटे की गैयाँ
जित हाँके हँक जैहें
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

हम तो बाबुल तोरे बेले की कलियाँ
घर-घर माँगे हैं जैहें

अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

कोठे तले से पलकिया जो निकली
बीरन में छाए पछाड़
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

हम तो हैं बाबुल तोरे पिंजरे की चिड़ियाँ
भोर भये उड़ जैहें
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

तारों भरी मैनें गुड़िया जो छोडी़
छूटा सहेली का साथ
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

डोली का पर्दा उठा के जो देखा
आया पिया का देस
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस
अरे, लखिय बाबुल मोरे

इस खूबसूरत गीत को यू-ट्यूब पर मालिनी अवस्थी की आवाज़ में सुनने के लिये अपनी डिवाइस पर इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

<u>दोहे</u> -

अमीर खुसरो के दोहे रहस्वाद आ उत्तम उदाहरण हैं, जिनमे प्रेम के वर्णन के बहाने ईश्वर की आराधना की गई है। कुछ उदाहरण देखिये -

खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पियो को, दोउ भए एक रंग।।

खुसरो दरिया प्रेम का, उल्टी वा की धार।
जो उतरा सो डूब गया, जो डूबा सो पार।।

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, सांझ भयी चहु देस।।

खुसरो मौला के रुठते, पीर के सरने जाय।

कहे खुसरो पीर के रुठते, मौला नहिं होत सहाय।।

<u>गज़ल</u> -

अमीर खुसरो की इस गज़ल में एक लाइन फारसी और एक लाइन हिन्दवी में लिखने का बहुत सुंदर उदाहरण है -

ज़िहाल-ए मिस्कीं (गरीब की दुर्दशा) मकुन (नहीं) तगाफ़ुल (लापरवाही),
दुराये नैना बनाये बतियां ।
कि ताब-ए-हिजरां (विरह को सहन करना की शक्ति) नदारम (नहीं होना) ऎ जान,
न लेहो काहे लगाये छतियां ।

मुझ गरीब की दुदर्शा के प्रति लापरवाही न करो और बातें बनाकर मुझसे नज़रें न फेरो। मेरे अंदर विरह को सहन करने की शक्ति नहीं है। मुझे सीने से क्यों नहीं लगा लेते हो।

शबां-ए-हिजरां (विरह की रात) दराज़ (लंबी) चूं (जैसे) ज़ुल्फ़
वा रोज़-ए-वस्लत (मिलन का दिन) चो (छूना) उम्र कोताह (छोटा),
सखि पिया को जो मैं न देखूं
तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां ।

विरह की रात जुल्फों की तरह लंबी है और मिलन का दिन बहुत छोटा है। ए सखि मै अपने पति को देखे बिना अंधेरी रातें कैसे काटूं।

यकायक (अचानक) अज़ (से) दिल, दो (देना) चश्म-ए-जादू (आंखों का जादू)
ब सद फ़रेबम (सौ तरह के फरेब) बाबुर्द (मिल जाना) तस्कीं (तस्कीन, राहत),
किसे पडी है जो जा सुनावे
पियारे पी को हमारी बतियां ।

अचानक ही उनकी नज़रों का जादू सौ तरह की फरेब करके मेरे दिल पर चल गया है और राहत नहीं मिलती। कोई तो जाकर मेरे पति को मेरी हालत के बारे में बताये।

चो (जैसे) शमा सोज़ान (जली हुई शमा), चो ज़र्रा (कण) हैरान
हमेशा गिरयान, बे इश्क आं मेह ।

न नींद नैना, ना अंग चैना
ना आप आवें, न भेजें पतियां ।

जलती हुई शमा की तरह मैं हैरान होकर प्रेम की ज्वाला में पड़ी हुई हूं। न नींद आती है, न शरीर को चैन है। वह न तो आते हैं और न ही पत्र भेजते हैं।

बहक्क-ए-रोज़े (बहक्क- हक से, रोज - दनि) , विसाल-ए-दिलबर (प्रेमी से मिलन)
कि दाद (तारीफ) मारा, गरीब खुसरौ ।
सपीत मन के, दुराय राखूं
जो जाय पाऊं, पिया कि खतियां ।

जिस दिन गरीब खुसरो अपने प्रेमी से मिलेगा वह अपने मन की बाते मन में ही रखेगा और किसी को बतायेगा नहीं।

इस ग़ज़ल को यू-ट्यूब पर छाया गांगुली की आवाज़ में सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

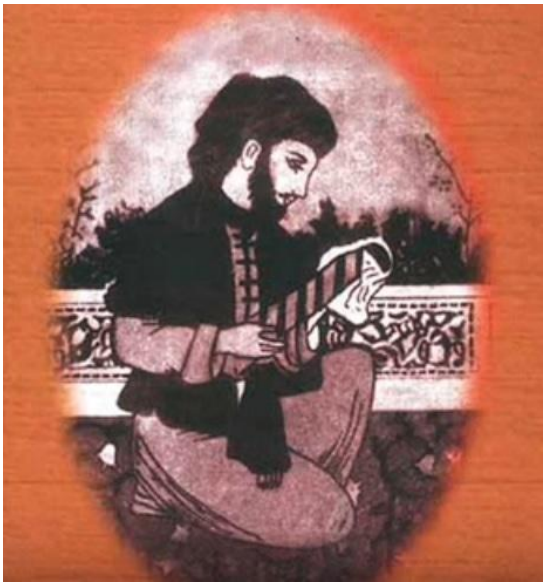

इसी को उस्ताद शुजात खां साहब की आवाज़ में नीचे के फोटो पर क्लिक करके सुनें -

<u>पहेलियां</u> -

अमीर खुसरों की पहेलियां दो प्रकार की हैं -

बूझ पहेली - यह वे पहेलियां हैं जिनका उत्तर पहेली में ही छिपा रहता है। उदाहरण के लिये -

गोल मटोल और छोटामोटा-,
हर दम वह तो जमीं पर लोटा।
खुसरो कहे नहीं है झूठा,
जो न बूझे अकिल का खोटा।।
उत्तर लोटा। -

श्याम बरन और दाँत अनेक,
लचकत जैसे नारी।
दोनों हाथ से खुसरो खींचे
और कहे तू आ री।।
उत्तर आरी। -

हाड़ की देही उज् रंग,
लिपटा रहे नारी के संग।
चोरी की ना खून किया
वाका सर क्यों काट लिया।
उत्तर नाखून। -

बाला था जब सबको भाया,
बड़ा हुआ कुछ काम न आया।
खुसरो कह दिया उसका नाव,
अर्थ करो नहीं छोड़ो गाँव।।
उत्तर दिया। -

बिन-बूझ पहेली - इनका उत्तर पहेली के भीतर नहीं होता -

एक नार कुँए में रहे,
वाका नीर खेत में बहे।
जो कोई वाके नीर को चाखे,
फिर जीवन की आस न राखे।।

उत्तर - तलवार

एक थाल मोतियों से भरा,
सबके सर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे,
मोती उससे एक न गिरे।

उत्तर - आसमान

अमीर खुसरों ने कुछ **दोहा पहेलियां** भी लिखी हैं -

उज्जवल बरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
देखत मैं तो साधु है, पर निपट पार की खान।।
उत्तर (पक्षी) बगुला -

<u>कह मुकरियां</u> -

यह कुछ-कुछ पहेलियों की तरह हर हैं। किसी बात को कह कर मुकर जाना कह-मुकरियां है। कुछ उदाहरण देखिये -

लिपट लिपट के वा के सोई
छाती से छाती लगा के रोई
दांत से दांत बजे तो ताड़ा
ऐ सखि साजन? ना सखि जाड़ा!

रात समय वह मेरे आवे
भोर भये वह घर उठि जावे
यह अचरज है सबसे न्यारा
ऐ सखि साजन? ना सखि तारा!

नंगे पाँव फिरन नहिं देत
पाँव से मिट्टी लगन नहिं देत
पाँव का चूमा लेत निपूता
ऐ सखि साजन? ना सखि जूता!

खुसरो की कुछ मुकरियां यू-ट्यूब पर देखने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

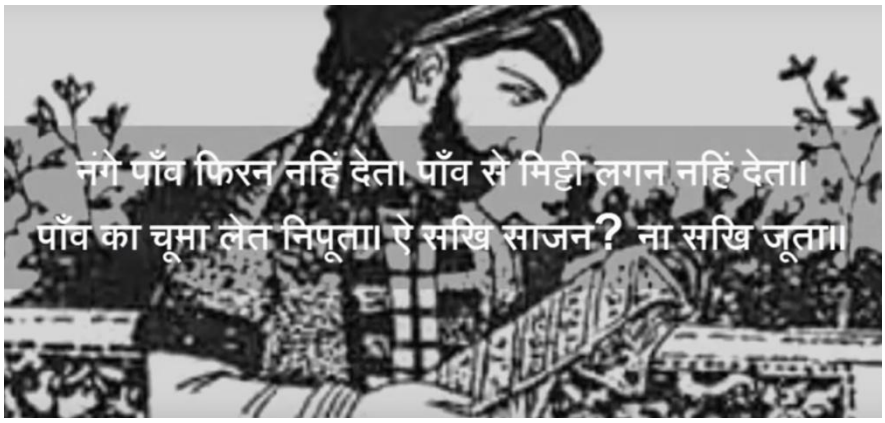

<u>ढ़कोसले या अनमेलियां या आडंबर</u> - यह ऊल-जलूल बातें हैं जिनका कोई अर्थ नहीं हैं। अमीर खुसरो ने इसे एक विधा के रूप में विकसित किया था। कुछ मजेदार उदाहरण देखिये -

खीर पकाई जतन से और चरखा दिया जलाय।
आयो कुत्तो खा गयो, तू बैठी ढोल बजाय, ला पानी पिलाय।

भैंस चढ़ी बबूल पर और लपलप गूलर खाय।
दुम उठा के देखा तो पूरनमासी के तीन दिन।

बी मेहतरानी दाल पकाओगी या नंगा ही सो रहूं।

गोरी के नैना ऐसे बड़े जैसे बैल के सींग।

<u>दु:सुखने</u> - यह ऐसी पहेलियां हैं जिनमें दो प्रश्न पूछे जाते हैं परंतु दोनो का उत्तर एक ही है। कुछ उदाहरण हैं -

गोश्त क्यों न खाया?
डोम क्यों न गाया?
उत्तर–गला न था

जूता पहना नहीं
समोसा खाया नहीं
उत्तर– तला न था

अनार क्यों न चखा?
वज़ीर क्यों न रखा?
उत्तर– दाना न था(बुद्धिमान=अनार का दाना और दाना)
.
रोटी जली क्यों? घोडा अडा क्यों? पान सडा क्यों ?
उत्तर– फेरा न था
पंडित प्यासा क्यों? गधा उदास क्यों ?
उत्तर– लोटा न था

अमीर खुसरो भारत के लोक मानस में बसे हुए हैं। उनकी रचनाओं को कव्वालों, लोक गायकों और आम लोगों ने पीढ़ी दर पीढ़ी बचाये रखा है।

भक्त रैदास

रैदास निर्गुण भक्ति धारा के कवि है। वे कबीर के समकालीन थे। उनका जन्म चर्मकार जाति में हुआ था। वे अपने जीवनकाल में ही महान संत और गुरू के रूप में पूजे जाने लगे थे। वे बनारस में रहते थे, तथा रामानंद जी के शिष्य थे। ऐसा माना जाता है कि मीराबाई भी रैदास की शिष्या थीं। मीरा ने स्वयं लिखा है -

गुरु रैदास मिले मोहि पूरे, धुरसे कलम भिड़ी।
सत गुरु सैन दई जब आके जोत रली।

संत रैदास के 40 पद गुरू गृंथ साहब में भी मिलते हैं। संत रैदास ने समाज सुधार का बहुत कार्य किया। उन्होने दलितों को पूजा का अधिकार दिलाया। वे हिन्दु एवं मुसालमान में भी कोई अंतर नहीं मानते थे। उनकी रचनाओं में समाज सुधार की यह भावना स्पष्ट रूप से दिखती है। जांति-पांति, आडंबर और कर्मकांड में उनका विश्वास नहीं था। कहते हैं कि एकबार उन्हें किसी को समय से जूते बनाकर देने थे, इसलिये वे गंगा स्नानन के लिये नहीं जा सके। उन्होंने कहा - **मन चंगा तो कठौती में गंगा।**

संत रैदास के कुछ दोहे देखिये जिनमें समाज-सुधार के सुर स्पष्ट रूप से दिखते हैं -

कृस्न, करीम, राम, हरि, राघव, जब लग एक न पेखा।
वेद कतेब कुरान, पुरानन, सहज एक नहिं देखा।।

कृष्ण, करीम, राम, हरि, राघव आदि सभी को जब तक एक नहीं मनोगे और वेद, कुरान आदि सभी धर्म गृंथों को एक समान नहीं मानोगे तब तक तुम्हें ईश्वर नहीं मिलेंगे।

कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक हवै चुनि खावै।

ईश्वर की भक्ति बड़े भाग्य और अपना अभिमान त्याग देने से ही मिलती है, जिस प्रकार बड़ा सा हाथी शक्कर के दाने चुनकर नहीं खा पाता परंतु छोटी सी चीटी इन दानों को खा लेती है।

रैदास कनक और कंगन माहि जिमि अंतर कछु नाहिं।
तैसे ही अंतर नहीं हिन्दुअन तुरकन माहि।।

रैदास कहते हैं कि जिस प्रकार सोने में और सोने से बने हुए कंगन में कोई अंतर नहीं हैं उसी प्रकार हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई अंतर नहीं है।

हिंदू तुरक नहीं कछु भेदा सभी मह एक रक्त और मासा।
दोऊ एकऊ दूजा नाहीं, पेख्यो सोइ रैदासा।।

हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई भेद नहीं है, सभी में एक ही रक्त और मांस है। रैदास दोनो ही को एक समान देखते हैं।

हरि-सा हीरा छांड कै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रविदास।।

ईश्वर जैसा हीरा छोड़कर जो किसी दूसरे की चाहत करेंगे, रैदास कहते हैं कि वे लोग निश्चित रूप से नरक में ही जायेंगे।

वर्णाश्रम अभिमान तजि, पद रज बंदहिजासु की।
सन्देह-ग्रन्थि खण्डन-निपन, बानि विमुल रैदास की।।

वर्णआश्रम (जाति-पांति) को छोड़कर जो उनके पैरों की धूल लेगा रैदास की विमल वाणी उसके सभी संदेहों को समाप्त कर देगी।

जाति-जाति में जाति हैं, जो केतन के पात।
रैदास मनुष ना जुड़ सके जब तक जाति न जात।।

जातियों के भीतर और ढ़ेर सारी जातियां हैं जैसे केले के पत्तों के भीतर और पत्ते होते हैं। रैदास कहते हैं कि जब तक जाति समाप्त नहीं होगी तब तक सभी मनुष्य एक दूसरे से नहीं जुड़ पायेंगे।

भक्त रैदास के कुछ भक्ति पद - रैदास के अनेक भजन शास्त्रीय रागों में गाये गये हैं।

प्रभु जी तुम चंदन हम पानी। जाकी अंग॥अंग बास समानी-
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिन राती॥
प्रभु जी तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहिं मिलत सोहागा।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भक्ति करै 'रैदासा॥

यह प्यारा सा भजन अनुप जलोटा की आवाज़ में यू-ट्यूब पर सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

।। राग गौड़।।

ऐसे जानि जपो रे जीव। जपि ल्यो राम न भरमो जीव।। टेक।।

गनिका थी किस करमा जोग, परपूरुष सो रमती भोग।।१।।

निसि बासर दुस्करम कमाई, राम कहत बैकुंठ जाई।।२।।

नामदेव कहिए जाति कै ओछ, जाको जस गावै लोक।।३।।

भगति हेत भगता के चले, अंकमाल ले बीठल मिले।।४।।

कोटि जग्य जो कोई करै, राम नाम सम तउ न निस्तरै।।५।।

निरगुन का गुन देखो आई, देही सहित कबीर सिधाई।।६।।

मोर कुचिल जाति कुचिल में बास, भगति हेतु हरिचरन निवास।।७।।

चारिउ बेद किया खंडौति, जन रैदास करै डंडौति।।८।।

मुझे इस भजन का ओशो सिध्दार्थ औलिया का एक विडियो यू-ट्यूब पर मिला है। इस भजन को यू-ट्यूब पर सुनने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

।। राग विलावल।।

गोबिंदे तुम्हारे से समाधि लागी। उर भुअंग भस्म अंग संतत बैरागी।। टेक।।

जाके तीन नैन अमृत बैन, सीसा जटाधारी, कोटि कलप ध्यान अलप, मदन अंतकारी।।१।।

जाके लील बरन अकल ब्रह्म, गले रुण्डमाला, प्रेम मगन फिरता नगन, संग सखा बाला।।२।।

अस महेश बिकट भेस, अजहूँ दरस आसा, कैसे राम मिलौं तोहि, गावै रैदासा।।३।।

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी निर्गुण प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि है। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के जायस नामक स्थान पर हुआ था। उन्होने अपनी पुस्तक आखरी कलाम ने लिखा है -

जायस नगर मोर अस्थानू। नगरक नांव आदि उदयानू॥
तहां देवस दस पहुने आएऊं। भा वैराग बहुत सुख पाएऊं॥

अर्थात् मेरा स्थान जायस नगर है जिसका पुराना नाम उदयान भी है। मैं वहां दस दिन के मेहमान के रूप में जन्मा था (क्योंकि यह जीवन नश्वर है), और वहीं पर वैराग्य प्राप्त होने से मुझे बुहत सुख मिला।

उनके पिता एक छोटे जमींदार - मलिक राजे अशरफ थे। ऐसा माना जाता है कि इन्हें अमेठी के राजा का संरक्षण प्राप्त था। पद्मावत, अखरावट, आख़िरी कलाम, कहरनामा, चित्ररेखा आदि इनके प्रसिध्द गृंथ हैं, जिसमें पद्मावत प्रमुख है। जायसी की भाषा अवधी है एवं उन्होने अपनी कविता में मुख्यत: दोहा, चौपाई आदि छंदों का प्रयोग किया है। कुछ लोगों का मानना है कि जायसी ने अपने के काव्य के लिये फारसी लिपि का प्रयोग किया था, क्योंकि उनके समय तक उर्दू का उदय नहीं हुआ था, परंतु कुछ लोगों का कहना है कि उन्होने अपना काव्य जनसाधारण के लिये लिखा था इसलिये नागरी का ही उपयोग किया होगा।

जायसी का पद्मावत यूं तो प्रेकथा है, परंतु उन्होने स्वयं ही कहा है कि यह एक प्रकार का रूपक है जो आत्मा के परमात्मा के मिलन की कथा कहता है। उन्होने स्वयं पद्मवत में लिखा है -

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा । कहा कि हम्ह किछु और न सूझा ॥
चौदह भुवन जो तर उपराहीं । ते सब मानुष के घट माहीं ॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पद्मिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया-धंधा।बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोई सैतानू।माया अलाउदीं सुलतानू।।

अर्थात् - मैने इसका अर्थ पंडितों से पूछा तो उन्होने कहा कि हमे तो इसके सिवा कुछ समझ नहीं आता कि जो इस ब्रह्मांड के चौदह भुवन है वे सभी मनुष्य के इस शरीर में ही हैं। चित्तौड़ हमारा तन या शरीर है, राता रत्नसेन हमारा मन हैं, हमारा ह्रद सिंहल व्दीप है, पद्मावती बुध्दि है, हीरामन तोता गुरू है, नागमती यह नश्वर दुनिया या मोह है, राघव आत्मा को पथभ्रष्ट करने वाला शैतान है और सुलतान अलाउद्दीन माया है। परंतु कुछ लोग यह भी मानते हैं कि कथा के उत्तरार्ध को ऐतिहासिक बनाने के कारण रूपक पूरी तरह से बंध नहीं पाया है।

<u>पद्मावत की कथा इस प्रकार है</u> - सिंहल द्वीप के राजा की पुत्री पदमावती (पद्मिनी का अर्थ है कमल जैसी; पद्मिनी नायिका भेद में सर्वश्रेष्ठ नायिका भी मानी जाती है) बहुत सुंदर थी। उसके तोते का नाम हीरामन था। एक दिन बिल्ली से बचने के लिये वह तोता भागा। उसे एक बहेलिए ने फँसाकर एक ब्राह्मण को बेच दिया, जिसने उसे चित्तौड़ के राजा रतनसिंह राजपूत को बेच दिया। इस तोते से पद्मिनी के अद्भुत सौंदर्य का वर्णन सुनकर, राजा उसे प्राप्त करने के लिये अनेक वनों और समुद्रों को पार करके सिंहल पहुँचा। तोते ने पद्मावती को उसके प्रेम का संदेश दिया। पद्मावती राजा से मिलने आई। राजा उसे देखकर उसके तेज से बेहोश हो गया। पद्मावती ने उसके ह्रदय पर चंदन से यह लिख दिया था कि उसे वह तब पा सकेगा जब वह सिंहलगढ़ पर चढ़कर आएगा। तोते की सहायता से वह सिंहलगढ़ गया जहां सिंहल के राजा ने पहले तो उसे सूली देने का आदेश दिया परंतु तोते से उसका प्रेम जानने के बाद उसने पद्मावती का विवाह रतनसिंह के साथ कर दिया। रतनसिंह पहली पत्नी नागमती ने किसी प्रकार एक पक्षी से अपने विरह का वर्णन उसके पास भिजवाया। तब रतनसिंह पद्मावती को लेकर चित्तौड़ लौट आया। रतनसिंह में अपनी सभा के राघव नाम के पंडित को झूठ बोलने के कारण निकाल दिया था। उसने सुल्तान अलाउद्दीन से पद्मावती के सौंदर्य की बड़ी प्रशंसा की। अलाउद्दीन ने पदमावती को पाने के लिये चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। बहुत दिनो तक भी जीत न पाने के कारण अलाउद्दीन ने धोखे का संदेश भेजा, और रतनसिंह जब बाहर निकला तो अलाउद्दीन ने उसे बंदी बना लिया। पद्मावती दु खी: होकर अपने पति को छुड़ाने के लिये अपने सामंतों गोरा तथा बादल के साथ सोलह सौ डोलियाँ सजाकर

और उनमें राजपूत सैनिकों को रखकर दिल्ली गई। राजपूत रतनसिंह को लेकर निकल भागे। जिस समय वह दिल्ली में बंदी था तब कुंभलनेर के राजा देवपाल ने पद्मावती से प्रेमप्रस्ताव किया था। यह सुनकर रतनसिंह में देवपाल को युध्द में मार दिया परंतु स्वयं भी घायल हुआ और घर पहुँचते ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। पद्मावती और नागमती ने जौहर कर लिया। अलाउद्दीन भी पीछा करता हुआ चित्तौड़ पहुँचा, किंतु उसे राख ही मिली।

पद्मावत में कवि ने काव्य के सभी अंगों को बहुत सुंदर ढ़ग से सजाया है। महाकाव्य होने के कारण इसमें सभी रस हैं।

<u>प्रारंभ में ईश्वर की विनयपूर्ण स्तुति हैं</u> -

सुमिरौं आदि एक करतारू । जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू ॥
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू । कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू ॥
कीन्हेसि अगिनि, पवन, जल खेहा । कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा ॥
कीन्हेसि धरती, सरग, पतारू । कीन्हेसि बरन बरन औतारू ॥
कीन्हेसि दिन, दिनअर, ससि, राती । कीन्हेसि नखत, तराइन-पाँती ॥
कीन्हेसि धूप, सीउ औ छाँहा । कीन्हेसि मेघ, बीजु तेहिं माँहा ॥
कीन्हेसि सप्त मही बरम्हंडा । कीन्हेसि भुवन चौदहो खंडा ॥
कीन्ह सबै अस जाकर दूसर छाज न काहि ।पहिलै ताकर नावँ लै कथा करौं औगाहि ॥

अर्थात् - सर्व प्रथम मैं उस एकमात्र ईश्वर का स्मरण करता हूं, जिसने यह संसार बनाया है; प्रकाश बनाया, कैलाश बनाया, आग, हवा, जल आदि बनाये; धरती, स्वर्ग और पाताल बनाये और सभी प्रकार के पशु-पक्षी बनाये; दिन और सूर्य, रात और चंद्रमा बनाये; नक्षत्र और तारे बनाये; धूप और छांव बनायी बादल भी बनाये; जिसने इस ब्रह्मांड के सात व्दीप और चौदह भुवन बनाये; ऐसे ईश्वर का नाम लेकर मैं कथा प्रारंभ कर रहा हूं।

<u>पद्मावती के सौदर्य का नख-शिख वर्णन</u> -

<u>केश</u> -

बेनी छोरि झार जौं बारा । सरग पतार होइ अँधियारा ॥
कोंपर कुटिल केस नग कारे । लहरन्हि भरे भुअंग बैसारे ॥

अर्थात् - जब उसने अपनी वेणी खोल दी तो उसके केशों से स्वर्ग से पाजाल तक अंधेरा हो गया। ऐसा लगता था जैसे उसके केश काले-काले नागों की लहरें हैं।

<u>मांग</u> -

बरनौं माँग सीस उपराहीं । सेंदुर अबहिं चढा जेहि नाहीं ॥
बिनु सेंदुर अस जानहु दीआ । उजियर पंथ रैनि महँ कीआ ॥

अर्थात् - उसके सिर की मांग का वर्णन करता हूं, जिसपर अभी सिंदूर नहीं लगा है। बिना सिंदूर के ऐसा लगता है जैसे उजियारे रास्ते पर रात हो गई है।

<u>भौंहें</u> -

भौहैं स्याम धनुक जनु ताना । जा सहुँ हेर मार विष-बाना ॥
हनै धुनै उन्ह भौंहनि चढे । केइ हतियार काल अस गढे ?॥

अर्थात् - काली भौंहे जेसे किसी ने धनुष तान दिया हो और विष के बाण मारने वाली हो। उन भौंहों को चढ़ा रखा है। यह हथियार किसे मारने के लि बनाये हैं?

<u>नैन (आंखें)</u> -

नैन बाँक,सरि पूज न कोऊ । मानसरोदक उथलहिं दोऊ ॥
राते कँवल करहिं अलि भवाँ । घूमहिं माति चहहिं अपसवाँ ॥

अर्थात् - उसके बांके नैनों जैसे दूसरे नहीं हैं। यह नैन मानसरोवर के जल से भरे हैं। उसकी आंखों की काली पुतलियां कमल में बैठे काले भंवरे की तरह चंचल हैं जैसे भंवरा उड़ जाना चाहता है।

<u>नासिका</u> -

नासिक खरग देउँ कह जोगू । खरग खीन, वह बदन-सँजोगू ॥
नासिक देखि लजानेउ सूआ । सूक अइ बेसरि होइ ऊआ ॥

अर्थात् - नासिका इतनी तीखी है जैसे खड्ग हो और उसे देख कर तोता भी लता जाता है क्योंकि पाद्मावती की नासिका तोते की चोंच से भी सुंदर है।

<u>होठ</u> -

हीरा लेइ सो विद्रुम-धारा । बिहँसत जगत होइ उजियारा ॥
भए मँझीठ पानन्ह रँग लागे । कुसुम -रंग थिर रहै न आगे ॥
अस कै अधर अमी भरि राखे । अबहिं अछूत, न काहू चाखे ॥

अर्थात् - उसके दांत हीरे के समान सफेद हैं और होठ लाल हैं। इसलिये जब वह हंसती है तो ऐसा लगता है कि सुबी की लाली के बाद दिन निकल अया है और जगत में उजियारा हो गया है। पान के रंग से उन अधरों में ऐसा गाढ़ा लाल रंग लगा है कि फूलों का रंग भी उनके सामने नहीं टिक सकता। इन अधरों में अमृत भरा हुआ है और अभी तक इन्हें किसी ने छुआ नहीं हैं और चखा नहीं है।

<u>कुच</u> -

हिया थार कुच कंचन लारू। कनक कचोरि उठे जनु चारू।

अर्थात् हृदय - के थाल में कुच सोने का लड्डू है। या फिर आटे की कचौरी फूल रही है उठते हुए स्तन) तलने पर फूलती हुई बदामी रंग की, कचौरी जैसे लगते हैं।(या यह कहें कि उसके स्तन सोने के सुंदर उठे हुए काटोरे जैसे हैं।

<u>वियोग का वर्णन देखिये</u> -

<u>पद्मावती का वियोग वर्णन</u> -

पद्मावति तेहि जोग सँजोगा । परी पेम-बसे बियोगा ॥
नींद न परै रैनि जौं आबा । सेज केंवाच जानु कोइ लावा ॥

अर्थात् - प्रेम में पड़ी हुई पद्मावती को वियोग के कारा रात में नींद नहीं आती थी और उसे ऐसा लगता था कि उसकी सेज पर किसी ने केवांच (एक प्रकार का फल जिसके शरीर पर लग जाने से पूरे शरीर में खुजली होने लगती है) लगा दिया है।

<u>नागमती के वियोग का तो और भी मार्मिक वर्णन है</u> -

नागमती चितउर-पथ हेरा । पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा ॥
नागर काहु नारि बस परा । तेइ मोर पिउ मोसौं हरा ॥
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ । पिउ नहिं जात, जात बरु जीऊ ॥
भएउ नरायन बावन करा । राज करत राजा बलि छरा ॥
करन पास लीन्हेउ कै छंदू । बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू ॥
मानत भोग गोपिचंद भोगी । लेइ अपसवा जलंधर जोगी ॥
लेइगा कृस्नहि गरुड अलोपी । कठिन बिछोह, जियहिं किमि गोपी?॥
सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह ? ।
झुरि झुरि पींजर हौं भई , बिरह काल मोहि दीन्ह ॥1॥

अर्थात् - नागमती चित्तौड़ का रास्ता बार-बार देचाती है कि मेरे पति गए तो वापस नहीं आये। मेरे पति किसी नारी के बस में हो गए है जिसने मेरे पति को मुझसे छीन लिया है। तोता काल के समान मेरे पति नहीं मेरी जान को ही ले गया है। जैसे वामन बनकर नारायण ने राजा बलि का राज छीन लिया था और ब्राह्मण का रूप धरके कृष्ण ने कर्ण के कवच कुंडल छल से ले लिये थे। जैसे कृष्ण को गरुड़ ले गया था तो गापियां उनके विछोह में कैसे रही थीं। यह मुझ पर कैसी विपत्ति का गई है और विरह के कारण मैं पिंजर (हड्डियों का ढ़ांचा) बन गई हूं।

<u>षट्ऋतु वर्णन</u> -

जायसी ने ऋतुओं का बहुत की सुंदर वर्णन किया है। कुइ उदाहरण देखिये -

बसंत -

प्रथम वसंत नवल ऋतु आई । सुऋतु चैत बैसाख सोहाई ॥
चंदन चीर पहिरि धरि अंगा । सेंदुर दीन्ह बिहँसि भरि मंगा ॥

ग्रीष्म -

ऋतु ग्रीषम कै तपनि न तहाँ । जेठ असाढ कंत घर जहाँ ॥
पहिरि सुरंग चीर धनि झीना । परिमल मेद रहा तन भीना ॥

वर्षा -

रितु पावस बरसै, पिउ पावा । सावन भादौं अधिक सोहावा ॥
पदमावति चाहत ऋतु पाई । गगन सोहावन, भूमि सोहाई ॥

कोकिल बैन, पाँति बग छूटी । धनि निसरीं जनु बीरबहूटी ॥
चमक बीजु, बरसै जल सोना । दादुर मोर सबद सुठि लोना ॥

<u>पद्मिनी और नागमती की सती होने का बड़ा ही मार्मिक वर्णन कवि ने किया है</u> -

पद्मावति पुनि पहिरि पटोरी । चली साथ पिउ के होइ जोरी ॥
सूरुज छपा, रैनि होइ गई । पूनो-ससि सो अमावस भई ॥
छोरे केस, मोति लर छूटीं । जानहुँ रैनि नखत सब टूटीं ॥
सेंदुर परा जो सीस अघारा । आगि लागि चह जग अँधियारा ॥
यही दिवस हौं चाहति, नाहा । चलौं साथ, पिउ ! देइ गलबाहाँ ॥
सारस पंखि न जियै निनारे । हौं तुम्ह बिनु का जिऔं, पियारे ॥
नेवछावरि कै तन छहरावौं । छार होउँ सँग, बहुरि न आवौं ॥
दीपक प्रीति पतँग जेउँ जनम निबाह करेउँ ।
नेवछावरि चहुँ पास होइ कंठ लागि जिउ देउँ ॥

अर्थात् - जब पद्मावती कपड़े पहन कर आने पति के शव के साथ जोड़ी बनाकर चली, तब सूरज छिप गया और रात हो गई, और पूर्णिमा का चंद्रमा होते हुए भी अमावस हो गई। बाल खुले हुए थे, मोतियों की माला छूट गई। उसके माथे पर लगा हुआ लाल सिंदुर इस अंधेरे संसार में आग लगाना चाहता मालूम हो रहा था। उसने कहा कि मेरे पति आज के दिन मैं तुम्हारे गले में बाहें डालकर साथ जाना चाहती हूं। मेरे प्यारे, मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती। मैं अपना शरीर त्याग दूंगी और तुम्हारे साथ ही जल जाऊंगी और फिर लोट के नहीं आऊंगी। जैसे पतंगा दीपक पर जलकर अपनी जान दे देता है वैसे ही में भी तुम्हारे गले लगकर निछावर हो जाऊंगी।

<u>संसार के आसार होने के संबंध में राजा रत्नसेन के बैकुठवास खंड में बहुत सुंदर तरीके से कहा है</u> -

तौ लही साँस पेट महँ अही । जौ लहि दसा जीउ (जीव) कै रही ॥
काल आइ देखराई साँटी (संटी- छड़ी)। उठी जिउ चला छोडिं कै माटी ॥
काकर लोग, कुटुँब, घर बारू । काकर अरथ दरब संसारू ॥
ओही घरी सब भएउ परावा । आपन सोइ जो परसा, खावा ॥
अहे जे हितू साथ के नेगी । सबै लाग काढै तेहि बेगी ॥

हाथ झारि जस चलै जुवारी । तजा राज, होइ चला भिखारी ॥
जब हुत जीउ, रतन सब कहा । भा बिनु जीउ, न कौडी लहा ॥
गढ सौंपा बादल कहँ गए टिकठि (अरथी) बसि देव (राजा)।
छोडी राम अजोध्या, जो भावै सो लेव ॥

अर्थात् - जब तक सांस रही तब तक जीव की दशा थी। जब मृत्यु आई तो संटी दिखाकर जीव छोड़कर चला गया। कुटुंब, लोग, घर-बार, संसार सब पराये हो गये। जो साथी थे वे सभी चले गये, जैसे कोई जुआरी सब कुछ हार कर हाथ झाड़कर चला जाये या कोई राजा भिखारी बन जाये। राजा ने चित्तौड़गढ़ बादल को सौंप दिया और अरथी पर लेटकर चले गये। जब राम ने ही अयोध्या छोड़ दी तो अब चाहे कोई ले ले।

पद्मावती की कथा पर श्याम बेनेगल के दूरदर्शन पर प्रसारित प्रसिध्द सीरियल ''भारत एक खोज'' के एपिसोड को यू-ट्यूब पर देखने के लिये अपनी डिवाइस का इंटरनेट चालू करके नीचे की फोटो पर क्लिक करें -

समाप्त